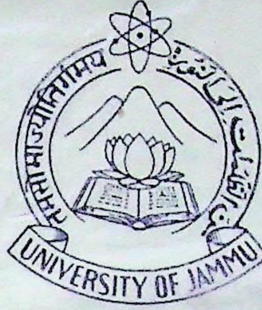
"पुराणादि ग्रन्थों में रत्नविज्ञान"
"Science of Gems as depicted in Puranas etc."



जम्मू विश्वविद्यालय (संस्कृत विभाग)

की

एम० फिल० उपाधि

के लिए

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

२००६

मार्ग निर्देशकः

डा० केदार नाथ शर्मा

रीडर,

संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

जम्मू १८०००६

अनुसंधान कर्त्ती:

दिपाली खजूरिया

एम०ए० (संस्कृत)

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

जम्मू - १८०००६

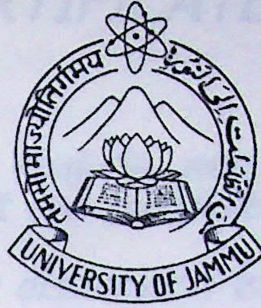
जुलाई २००६

Forwarded

31/07/06

"पुराणादि ग्रन्थों में रत्नविज्ञान"

"Science of Gems as depicted in Puranas etc."



जम्मू विश्वविद्यालय (संस्कृत विभाग)

की

एम० फिल० उपाधि

के लिए

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

२००६

मार्ग निर्देशकः

डॉ० केदार नाथ शर्मा

रीडर,

संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

जम्मू १८०००६

अनुसंधान कर्त्रीः

दिपाली खजूरिया

एम०ए० (संस्कृत)

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय

जम्मू - १८०००६

जुलाई २००६

CERTIFICATE

Certified that Miss. Deepali khajuria, who was registered for the degree of M.Phil in Sanskrit has completed her dissertation work under my supervision.

The exact title of her dissertation is:

"पुराणादि ग्रन्थों में रत्नविज्ञान"

"Science of Gems as depicted in Puranas etc."

She has fulfilled all the statutory requirement for the submission of dissertation for evaluation.

It is further certified that:

1. The dissertation embodies the work of the candidate herself;
2. The candidate worked under me for the period required under statues;
3. The candidate has put in the required attendance and seminars in the department during the period;
4. The conduct of the candidate remained quite satisfactory during the period of her work.

Dated:-29-7-06

(Dr.Kedar Nath Sharma)
Supervisor,
Reader,Deptt.of Sanskrit
Univeresity of Jammu.
Jammu- 180006.

पुरोवाक्

संस्कृत के प्रति मेरी रुचि बचपन से रही है। घर के सभी सदस्यों को संस्कृत के पवित्र मंत्रों का उच्चारण करते हुए सुनकर मेरे हृदय में भी यह इच्छा होती थी कि मैं भी इन मंत्रों को पढ़ूं समझूं और उनका उच्चारण करूं। यह सब तभी संभव था,जब मुझे संस्कृत पढ़ने का अवसर प्राप्त होता। यह अवसर मुझे कालेज में प्राप्त हुआ । B.A कक्षा के तीन वर्षों में संस्कृत पढ़ने के उपरान्त, एम० ए० चतुर्थ सत्र में ही एक पत्र ज्योतिष का पढ़ने का भी अवसर प्राप्त हुआ । इस विषय को पढ़ने के बाद मुझे इसमें अधिक ज्ञान अर्जित करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई । एम० फिल० के प्रथम सत्र की परीक्षा होने पर मेरी इस जिज्ञासा का समाधान डॉ० केदार नाथ शर्मा ने कर दिया। ज्योतिषके अनेक विषयों पर शोध निबन्ध लिखे जा चूके थे। मेरी इच्छा किसी नये विषय को लेकर उसमें शोध करने की थी। मेरी इस रुचि के अनुसार ही संस्कृत विभागकी शोध समिति ने मुझे रत्नों पर कार्य करने की प्रेरणा दी और मैने "पुराणादि ग्रन्थों में रत्नविज्ञान"(Science of Gems as depicted in puranas etc.) को अपने एम० फिल० का विषय बनाया। मेरे इस विषय चयन का मुख्य कारण यह भी था कि आज के इस युग में किसान से लेकर उद्योगपति तक, विद्यार्थी से लेकर वैज्ञानिक तक सभी जीवन की समस्याओं के समाधान के हेतु किसी न किसी रूप में ज्योतिष की ही शरण में जाते हैं क्योंकि वे चाहते है कि जब भी वे किसी कार्य को आरम्भ करें तो उनके कार्य में कोई विघ्न-बाधाएं उत्पन्न न हों । कार्य विधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए कौन-२ से उपचार किए जाएं, किस प्रकार के हवन यज्ञ किए जाएं या फिर कौन से ऐसे उपयोगी रत्नों को धारण किया जाए जिस से कि कार्य में बाधा उत्पन्न न हो और कार्य सफलता को प्राप्त करे। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए लोक उपकारी इस विषय को मैंने चुना । इन समस्याओं को हल करने के लिए प्रस्तुत शोध निबन्ध को चार अध्यायों में विभक्त कर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है-

प्रथम अध्याय- में रत्नों से सम्बद्ध ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय- के अन्तर्गत रत्न का अर्थ, विभिन्न ग्रन्थों में रत्नों की संख्या, गुण-दोष आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय- में रत्न परीक्षा विधि बताई गई है कि किस प्रकार से रत्नों का परीक्षण करके ही उन्हें धारण करना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय- में रत्न धारण के लाभ, अनिष्ट ग्रहों के शमन में रत्न धारण के लाभ, विविध रोगों में रत्नों की उपकारिता, शुभाशुभ फल प्राप्ति में रत्नों का योगदान तथा रत्न धारण का उपयुक्त समय आदि विषयों का विवेचन विस्तार से किया गया है।

अन्त में उपसंहार है जिसके अन्तर्गत पूर्व के चार अध्यायों में विवेचित सामग्री का सार संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

कोई भी कार्य ईश्वर की कृपाके बिना सम्पन्न नहीं होता है इसीलिए सर्वप्रथम मैं अपने इष्ट देव को प्रणाम करती हूँ । संस्कृत विभाग की अध्यक्षा डॉ० रमणिका जलाली को विशेष रूप से धन्यवाद प्रकट करती हूँ जिनसे प्रेरणा मुझे प्रारम्भ से अंत तक मिलती रही। इसके अतिरिक्त अन्य विभागीय प्राध्यापकों आदरणीया डॉ० शारदा गुप्ता,डॉ० जागीर सिहं,पुरूषोत्तम शर्मा, डॉ० सुषमा गुप्ता, डॉ० राम बहादुर शुक्ला को मैं हृदय से धन्यवाद प्रस्तुत करती हूँ जिनके स्नेहयुक्त व्यवहार तथा महत्वपूर्ण सुझाव इस शोध कार्यको सम्पूर्ण करने में सहायक रहे हैं ।

शोध-प्रबन्ध का सर्वाधिक श्रेय डॉ० केदार नाथ शर्मा को जाता है जिन के मार्ग निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हो सका। संस्कृत विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती विजय कौल को मैं धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर पुस्तके देकर सामग्री संकलन में मेरी सहायता की, पुस्तकालय के यह कर्मचारी श्री जतिन शर्मा को भी मैं धन्यवाद देती हूँ।

रघुनाथ पुस्तकालय के अध्यक्ष डॉ० धनीराम शास्त्री जी को मैं धन्यवाद देती हूँ तथा पुस्तकालय के सह कर्मचारी चन्द्र शर्मा का भी मैं धन्यवाद करती हूँ।

अन्त में शोध-प्रबन्ध के टंकन कार्य के लिए टंकन कर्त्ता चंद्र कुमार को मैं विशेष धन्यवाद प्रस्तुत करती हूँ।

शोध छात्रा
दिपाली खजूरिया

विषयानुक्रमिका

संकेत सूची

१-	अ० -	अध्याय
२-	श्लो०-	श्लोक
३-	ग० पु०-	गरुड पुराण
४-	अ० पु०-	अग्नि पुराण
५-	बृ० सं०-	बृहत्संहिता
६-	सि०भे०सं०-	सिद्ध भेषज संग्रह
७-	र० वि० -	रत्नविज्ञान
८-	वनो०चद्रो०-	वनौषधि चन्द्रोदय
९-	भा०प्र०नि०-	भाव प्रकाश निघण्टु
१०-	हि० वि०-	हिन्दी विश्वकोष
११-	अ०शा०-	अर्थ शास्त्र
१२-	ज्यो०र०-	ज्योतिष रहस्य
१३-	मु० चि०-	मुहूर्त चिन्तामणि

प्रथम अध्याय

१.१ रत्न से सम्बद्ध ग्रन्थ

रत्न से सम्बद्ध ग्रन्थ

१- गरुडपुराण-

गरुड पुराण दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में २२६ तथा द्वितीय खण्ड में ३५ अध्याय हैं । द्वितीय खण्ड को 'प्रेतकल्प' भी कहा जाता है । इस महापुराण के आधार पर भारतीय इतिहास और संस्कृति के विभिन्न पक्षों- भूगोल, इतिहास राजनैतिक इतिहास, समाज, आर्थिक जीवन, धर्म और दर्शन, मूर्तिकला और प्रासाद वस्तु आदि विषयों से सम्बद्ध सामग्री का विवेचन है ।[1]

२२६ अध्यायों वाले प्रथम खण्ड (अ०-१) में ग्रन्थ का महत्व एवं सृष्टि वर्णन (अ० ४-६) से लेकर विविध देवताओं सूर्य (अ०-७), विष्णु (अ०-८),लक्ष्मी (अ०-१०), शिव (अ०-२३) आदि का वर्णन है । ज्योतिष शास्त्रीय (अ०-५८- ६२) विवेचन भी किया गया है ।धर्म के विविध स्वरूपों का वर्णन करते हुए तीर्थों (अ०-८१) का माहतम्य भी बतलाया गया है। राजनीति का वर्णन बडे विस्तार के साथ(अ०-१०८-११५) उपलब्ध होता है। सूर्य चन्द्र आदि वशों का वर्णन (अ०-१३८-१४२) भी प्राप्त होता है। आयुर्वेद के आवश्यक निदान तथा चिकित्सा का वर्णन अनेक अध्यायों (अ०-१४६-१७७) में उपलब्ध होता है । नाना प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए औषधियों की व्यवस्था (अ०-१७०- १६४) भी मिलती है । दर्शन, वैष्णव धर्म, सांख्य ,योग ,वेदान्त(अ०-२२७) का भी उल्लेख हुआ है । अंतिम अध्याय (अ०-२२६) में गीता का सारांश वर्णित है ।

द्वितीय खण्ड में मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है? वह किस योनि में उत्पन्न होता हे तथा कौन-कौन से भोग भोगता है? इस विषय का वर्णन यद्यपि अन्य पुराणों में यत्र-तत्र पाया जाता है,परंतु इस पुराण में इस विषय का अत्यन्त विस्तृत तथा सांगोपांग वर्णन मिलता है जो अन्यत्र उपलबध नहीं होता है ।[2]

इन सब विषयों के अतिरिक्त यह ग्रन्थ रत्न सम्बन्धी सामग्री की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस ग्रन्थ में प्रथम खण्ड के ६८ से लेकर ८० तक के तेरह अध्यायों में भिन्न-भिन्न रत्नोंका विस्तार से विवेचन किया गया है । जिस में वज्र परीक्षा (अ०-६८) के अन्तर्गत वज्र की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, वज्र के विभिन्न प्रकार, वज्र के गुण-दोष, वज्र के प्राकृतिक

१- द्रष्टव्य पु० वि०- पृ०- १६०

२- द्रष्टव्य तदेव- पृ०- १६१

गुण तथा वज्र धारणके लाभ बताए गए हैं। मुक्तापरीक्षा (अ०-६९) में मुक्ता की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान,मुक्ता के आठ प्रकारों, मुक्ता के विविध लक्षण, परीक्षण विधि तथा विविध स्थानों सें उत्पन्न मुक्ता के मुल्यों का वर्णन है ।

पद्मराग परीक्षा (अ०-७०) में पद्मराग की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, परीक्षण विधि, विविध लक्षण तथा गुण-दोषों का वर्णन हैं। मरकतपरीक्षा (अ०-७१) में मरकत की उत्पत्ति,उत्पत्ति स्थान,विभिन्न स्थानों से प्राप्त होने वाली मरकत मणियों के लक्षण, गुण- दोष, परीक्षण विधि तथा गुण-दोष के अनुसार मुल्यों का वर्णन है ।[1]

इन्द्रनील परीक्षा (अ०-७२) में इन्द्रनील की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, विविध लक्षण, गुण-दोष, परीक्षण विधि तथा मूल्य का वर्णन है । वैदूर्य परीक्षा(अ०-७२) में उत्पत्ति, विविध लक्षण, गुण-दोष तथा परीक्षण विधि का वर्णन हुआ है ।

पुष्पराग परीक्षा (अ०-७४) में पुष्पराग की उत्पत्ति,गुण-दोष तथा परीक्षण विधि वर्णित है। कर्केतन परीक्षा(अ०-७५) तथा भीष्मक परीक्षा (अ०-७०) में कर्केतनकी उत्पत्ति तथा परीक्षण विधि उपलब्ध होती है । पुलक परीक्षा (अ०-७७) में पुलक की उत्पत्ति, लक्षण तथा गुण- दोष वर्णित हैं। रुधिराख्य परीक्षा (अ०-७८) में रुधिराख्य की उत्पत्ति, लक्षण तथा शोधन का उल्लेख मिलता है। स्फटिक परीक्षा(अ०-७९)में स्फटिक की परीक्षण विधि का वर्णन है तथा विद्रुम परीक्षा (अ०-८०) में विद्रुम की उत्पत्ति, गुण दोष तथा विद्रुम धारण के फल का वर्णन हुआ है।[2]

अन्य विद्याओं की भांति गरुडपुराण में यह भी वर्णित है कि रत्न शस्त्र का उदय और विकास ब्रह्मा तथा व्यास से ही हुआ था-

वैदूर्यपुष्परणाणां कर्केतनभीष्मकयोः ।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज।।[3]

२-अग्नि पुराण- अग्नि पुराण के ३८३ अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश हुआ है। विभिन्न अवतारों (रामवतार, कृष्णवतार इत्यादि) की कथाओं का संक्षेप में वर्णन कर रामायण और महाभारतकी कथा विस्तार से दी गई है । मन्दिर निर्माण की कला के साथ प्रतिष्ठा तथा पूजन के विधानका विवेचन संक्षेप में सुचारुरूप से किया गया है । ज्योतिष शास्त्र, धर्मशास्त्र, व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ मिलता है ।[4]

१- द्रष्टव्य- ग० पु०- पृ०-२
२- द्रष्टव्य- तदेव- पृ०-२
३- द्रष्टव्य- तदेव- १/७३/१ पृ०- २६६ में उद्धृत
४- द्रष्टव्य- पु०वि- पृ०-१५१

छन्द शास्त्र का निरूपण आठ अध्यायों में किया गया मिलता है। व्याकरण का भी विवेचन विस्तार से हुआ है । कोश के विषय में भी अध्याय लिखे गए हैं। जिन के अनुशीलन से पाठकों के शब्द ज्ञान की विशेष वृद्धि हो सकती है। योग शास्त्र के यम, नियम आदि आठों अंगो का वर्णन इस में संक्षेप में किया हुआ है।अन्त में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का सार संकलन है। एक अध्याय में गीता का भी सारांश वर्णित है । इस प्रकार इस पुराण के अनुशीलन से समस्त ज्ञान-विज्ञान का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ का २४६वां अध्याय रत्न शास्त्रीय महत्व का है। जिस में विभिन्न रत्नों के लक्षणों का वर्णन है ।

इन रत्नों में वज्र (हीरा) की श्रेष्ठता बतलाकर, व्रज की परीक्षण विधि, वज्र के विविध लक्षण बताए गए हैं। मरकत मणि के लक्षण, स्फटिक और पद्मराग की परीक्षण विधि वर्णित है। मुक्ता की उत्पत्ति,उत्पत्ति स्थान तथा गुण बताए गए हैं। इन्द्रनील मणि तथा वैदूर्य की परीक्षा बताई गई है। इन रत्नों के अतिरिक्त गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, पुलक,कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, शुभ सौगन्धिक, गंज,शंख, ब्रह्ममय,गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, तुष्यक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र,भुजंगमणि टिटिभ, भ्रामर और उत्पल का भी उललेख मिलता है ।[1]

विविध प्रकार की विद्याओं का उल्लेख होने के कारण इस अग्नि पुराण के लिए कहा गया है- "आग्नेये हि पुराणेअस्मिन् सर्वाः विद्याः प्रदर्शिताः" ।[2]

३-मुहूर्तचितामणि- मुहूर्तचिन्तामणि के प्रणेता आचार्य श्री राम ने १३ प्रकरणें में ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ के तेरह प्रकरणों में शुभाशुभ प्रकरण, नक्षत्र प्रकरण, संक्रान्ति प्रकरण, गोचर प्रकरण, संस्करण, प्रकरण,विवाह प्रकरण वधुप्रवेश प्रकरण, द्विरागमन प्रकरण, अग्न्याधान प्रकरण, राज्याभिषेक प्रकरण, यात्रा प्रकरण, वास्तु प्रकरण और सर्व शुद्धधात्रयदिशी, गृहप्रवेश आदि प्रकरण हैं ।[3]

यह ग्रन्थ रत्न परीक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । इस ग्रन्थ के चौथे प्रकरण (गोचर प्रकरण) में रत्न धारण तथा अल्प मुल्य रत्न धारण का वर्णन हुआ है । रत्न धारण में विविध ग्रहों से सम्बन्धित रत्नों का उल्लेख हुआ है। जिसमें हीरा, मोती , प्रवाल, गोमेद नीलम, वैदूर्य, पुष्पराग, पन्ना तथा माणिक्य का वर्णन है। किन-किन शुभ मुहूर्तों में यह रत्न धारण करने चाहिए इसका भी उल्लेख हुआ है । अधिक मूल्यवान् रत्न धारण की असमर्थता पर अल्प मूल्यवान्‌रत्नों को धारण करने का वर्णन मिलता है।[4]

१- द्रष्टव्य- पु० वि०- पृ०- १५१
२- द्रष्टव्य- अ० पु० अ०- ३८३/५२
३-द्रष्टव्य- मु० चि०- पृ०-७-१३
४-द्रष्टव्य- तदेव- पृ०-२०७-२०६

४- बृहत्संहिता-

वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता की विषय सीमा विशाल है । १०७ अध्यायों वाले इस ग्रन्थ में उपनयन (अ०-१) से लेकर संवत्सर (अ०-२)चन्द्र(अ०-३), राहु(अ०-४),भौम (अ०-६), बुध(अ०-७), बृहस्पति(अ०-८), शुक्र(अ०-६), शनि(अ०-१०) और केतु (अ-११) आदि ग्रहों से होने वाले शुभ-अशुभ फलों का वर्णन विस्तार से है । ग्रह युद्ध में ग्रहों के आपस में टकराने का वर्णन है । उत्पाताध्याय (अ०-४६) में उत्पात के लक्षण तथा फल बताए गए हैं। विभिन्न प्रकार के जानवरों के लक्षणों का वर्णन भी मिलता है । विभिन्न प्रकार के पुरुषों और स्त्रियों में पाए जाने वाले लक्षणों (अ०-६८, अ०-७०) का उल्लेख हुआ है । अंतिम के अध्यायों में विवाह पटल, ग्रहगोचर, रूपसत्राध्याय का वर्णन हुआ है ।[1]

इस ग्रन्थ के ८० से ८३तक के ४ अध्याय रत्न शास्त्र से सम्बन्धित हैं। जिस में रत्न परीक्षा, रत्नों की उत्पत्ति, रत्नों के नाम जिन में वज्रमणि के सात आकार स्थान, हीरे के प्रकार, शुभ-अशुभ हीरे के लक्षण, हीरे के धारण में गुण, मोतियों के आठ उत्पत्ति स्थान, मोतियों के लक्षण,मोतियों की विशेषताएं विभिन्न प्रकार के मुक्ता फल लक्षण, मोतियों में अमूल्यता तथा मोतियों से रचित आभूषणों की संज्ञा का वर्णन है । पद्मराग की उत्पत्ति, लक्षण, गुण-दोष तथा प्रभाव का उल्लेख हुआ है। मरकत मणि का प्रयोजन बताकर उसके लक्षण बताए गए हैं ।[2]

५- अर्थ शास्त्र-

कौटिलय के अर्थ शास्त्र में पन्द्रह अधिकरण हैं । इन पन्द्रह अधिकरणों में राजा के कार्य व्यापार, विद्या विषयक विचार, राजकीय अधिकारियों के कर्तव्यों, विवाह के लेन-देन शिल्पी वर्णन, व्यापारियों का उल्लेख, षड्यन्त्रकारियों द्वारा प्रजा की रक्षा के उपाय तथा कोष संग्रह का निरूपण है । गुण, सन्धि, विग्रह विभिन्न व्यसन तथा उनके प्रतिकार, युद्ध, आक्रमण, विभिन्न विपत्तियां चतुरंग सेना, शत्रुओं में फूट डालने वाले प्रयोगों, छल कपट पूर्ण उपाय, शत्रु वध के प्रयोग तथा शान्ति व्यवस्था के उपाय वर्णित हैं ।[3]

१-द्रष्टव्य बृ०सं०- पृ०- ७

२-द्रष्टव्य तदेव- पृ०- ८

३-द्रष्टव्य अ० शा०- पृ०- १२५-१२६

इस ग्रन्थ के दूसरे अधिकरण का ग्यारहवां अध्याय रत्न शास्त्रीय महत्व का है। जिसमें विभिन्न रत्नों की परीक्षाओं का वर्णन है । इस अध्याय में मोतियों की उत्पत्ति के स्थान,मोतियों की उत्पत्ति के कारण,मोतियों में पाए जाने वाले दोषों का वर्णन है। मोतियों से बनाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की मालाओं का भी उल्लेख मिलता है ।

मणियों के उत्पत्ति स्थान तथा पांच प्रकार के माणिक्य का भी उल्लेख मिलता है। वैदूर्यमणि तथा इन्द्रनील मणि आठ प्रकार की बताई गई है । स्फटिक मणि के चार प्रकारों का उल्लेख भी हुआ है।मणियों में पाए जाने वाले भिन्न- भिन्न गुण तथा दोषों का भी वर्णन मिलता है। मणियों की आठ प्रकार की उपजातियों का भी उल्लेख हुआ है। हीरे के छह उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं तथा इसके आकार-प्रकारों का भी वर्णन हुआ है। मूंगेके उत्पत्ति स्थान बताकर उसके दो प्रकारों का वर्णन किया गया है ।[१]

६- रत्न विज्ञान-

श्री पं० राधाकृष्ण द्वारा लिखित, रत्न विज्ञान २६७ पृष्ठों का रत्न विषयक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला ६६ के अन्तर्गत, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी द्वारा १९७२ में प्रकाशित है । इस ग्रन्थमें १८ प्रकार के भिन्न-भिन्न रत्नों का वर्णन किया गया है। इन रत्नों में हीरा, मुक्ता, प्रवाल माणिक्य, नीलम, पन्ना, वैदूर्य फिरोजा इत्यादि वर्णित है । हीरे की श्रेष्ठता बतलाकर हीरे की उत्पत्ति, गुण-धर्म, हीरकशोधन तथा हीरे की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार बताया गया है । मोती के उद्भव स्थान, बहुमूल्य मोती, मोती का विनिमय, कृत्रिम मोती, मोती परीक्षा मोती और ज्योतिष शास्त्र, मोती के दोष उत्कृष्ट मोती की छाया,गुण-धर्म,मोती भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है।[१]

प्रवाल का उत्पत्ति स्थान, रूप रंग, लक्षण, गुण धर्म, शोधन मारण, प्रवाल भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है । माणिक्य के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप, लक्षण, उत्कृष्ट, निकृष्ट माणिक्य, शुद्धाशुद्ध माणिक्य के गुण- दोष, माणिक्य के प्रतिनिधि रत्न, कृत्रिम माणिक्य, शोधन, भस्म इत्यादि का वर्णन है । नीलम के उत्पत्ति स्थान, लक्षण, प्रकार गुण-धर्म, कृत्रिम नीलम, शोधन-मारण, भस्मीकरण इत्यादि का वर्णन है ।[२]

पन्ना के उत्पत्ति स्थान,रूप रंग, लक्षण, शुद्ध पन्ने की परीक्षा, पन्ने के प्रमुख प्रकार प्राप्ति स्थान इत्यादि का वर्णन है। वैदूर्य के उत्पत्ति स्थान, वैदूर्य के प्रकार, रुप- रंग, लक्षण, गुणधर्म, चिकित्सा तथा उपयोगी वैदूर्य इत्यादि उल्लिखित हैं।

१- द्रष्टव्य - र० वि०- पृ०- ९

२- द्रष्टव्य तदेव- पृ०- १०

फिरोजा के उत्पत्ति स्थान, रूप-रंग लक्षण, गुण-धर्म,शोधन मारण इत्यादि वर्णित हैं। राजावर्त के उत्पत्ति स्थान,रूप-रंग इत्यादि का वर्णन है। वैक्रान्त के उत्पत्ति स्थान रंग, लक्षण, गुणधर्म शोधन-मारण, भस्मीकरणादि उल्लिखित है । पुलक के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप लक्षण, पुलक के प्रकारों का वर्णन है। अकीक के नाम उत्पत्ति स्थान, व्यवसाय, प्रकार, गुण दोषों का वर्णन है । भीष्ममणि के विभिन्न नाम, उत्पत्ति स्थान, लक्ष्ण इत्यादि वर्णित हैं । अम्बर तथा तृणकान्त के उत्पत्ति स्थान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान वर्णित हैं। गोमेद तथा पुखराज के उत्पत्ति स्थान, रंग-रूप, लक्षण, गुण दोष तथा कृत्रिमता वर्णित हैं ।[१]

इस प्रकार रत्न विज्ञान में विभिन्न प्रकार के १८ रत्नों का विस्तृत विवेचन दिया गया है। पं० राधाकृष्ण पराशर ने रत्नों का वैज्ञानिक अनुसंधान भी बतलाया है तथा रत्नों की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार भी बताया है ।

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१०-१२

द्वितीय अध्याय

२.१ रत्न का अर्थ

२.२ संख्या

२.३ गुण-प्रकृति

२.४ रत्नों की उत्पत्ति

रत्न का अर्थ, संख्या तथा गुण-प्रकृति

१- रत्न का अर्थ-

'रत्न' शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम मंत्र में प्राप्त होता है। किन्तु इसका सही अर्थ तत्कालीन टीका न होने के कारण नहीं लगाया जा सकता है। कुछ लेखकों ने इसका अर्थ 'पाषाण' के रूप में किया है तो कुछ लेखकों ने 'निधि' के अर्थ में किया है। पुराण ग्रन्थों में दैत्यों तथा देवताओं के बीच हुए समुद्र मन्थन में चौदह रत्नों की प्राप्ति का उल्लेख हुआ।[1]

यहाँ रत्न की संज्ञा लक्ष्मी, उच्चैश्रवा घोडे, ऐरावत हाथी इत्यादि को दी गई है। इन चौदह रत्नों में कौस्तुभ मणि का भी उल्लेख हुआ है, जो कि भगवान विष्णु को प्राप्त हुई। जिन पत्थरों को बहुमुल्य रत्नों की संज्ञा दी गई उनके प्राप्ति स्थान नदी,पृथ्वी, पहाड़ तथा समुद्र को बताया गया है। जिन पहाडों से रत्न प्राप्त होते हैं, उन्हें रत्नाचल, विविध रत्नों के आश्रय स्थल होने के कारण पृथवी को रत्नगर्भा और समुद्र से प्राप्त होने वाले प्रवाल, मुक्ता आदि रत्नों के कारण समुद्र को रत्नाकर की संज्ञा दी गई।[2]

आचार्यों ने रत्नों और उपरत्नों का विभाग करते हुए नौ पाषाणों को रत्न तथा दूसरों को उपरत्न माना है। नौ रत्नों में वज्र, नीलम, पुष्पराग माणिक्य, मरकत, गोमेदक, वैदूर्य तथा प्रवाल माने गए हैं। इनमें मुक्ता और मूंगा को पाषाण की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि दोनों ही समुद्र से प्राप्त होते हैं। एक सीप से तथा दूसरा समुद्र की भीतर की जड़ों से। वेदों में 'रत्न' शब्द का प्रयोग कीमती वस्तु और खजानों के अर्थ में हुआ है। प्राचीन समय में मणि को धागे में पिरोकर गले में पहना जाता था। मणि का अर्थ तावीज की तरह पहनने वाले रत्नों से था।[3]

अतः देखा जाता है कि 'रत्न' शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। किंतु बहुत से आचार्यों ने रत्न शब्द का अर्थ हीरा प्रवाल आदि के अर्थ में किया है।

विभिन्न कोषकारों ने अपने-अपने मतों के अनुसार रत्न शब्द का अर्थ दिया है।

१- क) द्रष्टव्य- शि० म०पु० पृ०- ५२७

ख) द्रष्टव्य- स्क० पु० अ०- ६

ग) महाभारत प्रथम खंड अ०- २८

२-द्रष्टव्य हि०वि०,पृ०-३३

३-द्रष्टव्य रत्न परीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह पृ०- १३

१- अमरकोश के अनुसार रत्न का अर्थ-

नपुंसक लिंगी रत्न शब्द का अर्थ है- मणि, अपनी जाति में श्रेष्ठ आदि ।[1]

२- Sanskrit-Hindi -English Dictionary-

इसके अनुसार रत्न शब्द का अर्थ है- देय, तोहफा, धन, निधान, कीमती पत्थर, रत्न मोती, हीरे, ज्वाहरात, gift riches,treasures, precious stone,jewel,pearl. मुक्ता, पद्मराग, मरकेन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक रुधिराक्ष, भीष्म, स्फटिक, प्रवाल, रूपाणि त्रयोदश रत्नानि । श्रेष्ठ वस्तुओं का आश्रय शिव 'प्रभूतानि बहूनि रत्नानि श्रेष्ठवस्तूनि यस्मिन् स 'शिव': ।[2]

३- Sanskrit English Dictionary के अनुसार-

रत्न शब्द का अर्थ है- (Ratna) n. (1.ra-) a gift present, good wealth,riches,the nine stones which are pear,ruby,topaz, diamond, Emerald, lapis, lazuli, coral, sapphire, Gomeda but according to manu's law book, Mahabharata and chanakya- any thing which is best of its kind.[3]

४-संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ के अनुसार रत्न शब्द का अर्थ है-

(न०) (रम्यति हर्षयाति,रम्+णिच्+न,तकारादेश) जवाहर, बहुमूल्य चमकीले, छोटे और रंग-बिरंगे पत्थर (रत्नों की संख्या ५, ६,६, या १४ बतलायी जाती हैं।) कोई भी बहुमूल्य प्रिय पदार्थ, कोई भी सर्वोत्तम वस्तु ।[4]

---

१. रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि-

'रत्नम्' ('न')के अपने जातिवालों (सामान्य वर्ग) में श्रेष्ठ हीरा आदि मणि-मणि अर्थ हैं। (रेति)।। रमयति। 'रमु क्रीडायाम'(भ्वा०आ०अ०)। ण्यन्तः। अन्तर्भावि तव्यर्थो वा, रमन्तेऽ स्मिन वा। 'रमेस्त च' (३०३/१४) इति नः। 'नऽवशि' '७/२/८' इति नेट्। णेरनिटि (६/४/५१)। रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुंसंकम् इति मेदिनी '८३/१७' अमरकोश, पृ०-४४२,

२-Sanskrit Hindi English Dictionary,page- 483

३- Sanskrit English Dictionary] page- 864

४-द्रष्टव्य संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ०- ६३५

२- रत्नों की संख्या-

१-गरुड पुराण-

गरुड पुराण में तेरह रत्नों का वर्णन मिलता है। इन रत्नों में वज्र (हीरा) मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्मक, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक तथा विद्रुम का वर्णन है ।[1]

२-अग्नि पुराण-

अग्नि पुराण में ३५ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है। ये रत्न हैं- वज्र (हीरा) मरकत् पद्मराग मुक्ता, महानील, इन्द्रनील, वैदूर्य, गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक,कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, शुभसौगन्धिक ,गंज, शंख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, मरकत, तुष्यक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजंगमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, भ्रामर और उत्पल हैं ।[2]

३- बृहत्संहिता-

वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता में २२ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है। यह रत्न हैं। वज्र (हीरा),इन्द्रनील, मरकत(पन्ना),कर्केतन, पद्मराग, रुधिराख्य वैदूर्य्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिक, चन्द्रकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शंख, महानील पुष्पराग, ब्रह्ममणि,ज्योतिरस, सस्यक, मुक्ता तथा मूंगा है।१

१- द्रष्टव्य गo पुo- ६८/८०

२- रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्य्यमिदं नृपैः।
वज्रंमरकतं रत्नं पद्मरागंच मौक्तिकं।।
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्य्यंगन्धशस्यकं।
चंद्रकान्तं सूर्य्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा।।
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतिरसं द्विज।
स्फटिकं राजपट्टंच तथा राजमयं शुभम्।।
सौगन्धिकं तथा गज्जं शंखब्रह्ममयं तथा।
गौमेदं रुधिराक्षंच तथा भल्लातकं द्विज।।
धूलो मरकतंचैव तुथकं सोस मेवच।
पोलुं प्रवालकंचैव गिरिवज्रद्विजोत्तम्।।
भुजंगममणिंचैव तथा वज्रमणिं शुभम्।
टिट्टिभं च तथा पिण्डं भ्रामरं च तथोत्पलम्।। अo पुo- २४६/ १-६

१- वजेन्द्रनीलमरकतकर्केत्नरपद्मरागरुधिराख्याः।
वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ताः।।
सौगन्धिकगोमेदकशंखमहानीलपुष्परागाख्याः।
ब्रहममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रबालानि।। बृo संo- ८०/ ४-५

इन रत्नों में वज्र मोती, पद्मराग और मरकतमणि का विस्तार से विवेचन हुआ है। वराहमिहिर ने एक ही रत्न के अनेक प्रकारके भेद गिनाए हैं जैसे शशिकान्त स्फटिक का ही एक भेद है। महानील और इन्द्र नील नीलम है। तथा सौगन्धिक और पद्मराग माणिक के ही भेद हैं ।

४- अर्थ शास्त्र-

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में नौ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है वे रत्न हैं- वज्र, प्रवाल, मोती,माणिक्य (पद्मराग) वैदूर्य, पुष्पराग,गोमेद, इन्द्रनील, स्फटिक। इन रत्नों के प्रकारों का विवेचन भी विस्तार से किया गया है ।[1]

५- विष्णुधर्मोत्तर पुराण-

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ३४ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ हैं यह रत्न हैं वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता, इन्द्रनील, महानील, वैदूर्य, इन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक,कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजवर्त, राजमय, शुभसौंगधिक, शंख, ब्रह्ममय, गोमोद, रुधिराक्ष, सस्यक, बल्लातक, धूलीमरकत, तुक्तूकं, पलु ,प्रवाल, गिरिवज्र, भागर्व, भुजगेशमणि, वज्रमणि, टिटिभ, भ्रामार तथा उत्पल हैं ।[2]

विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें नव रत्नों को ही महारत्न माना है। ये रत्न मोती, हीरा, लहसुनिया, माणिक, पोखराज, गोमेद, नीलम, पन्ना और मूंगा हैं ।[3] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी रत्नों के भेद दिए गए हैं।

१- द्रष्टव्य अ० शा० अ० ११

२- वज्र मरकतं चैव पदमरागं च मौक्तिकम्।
इन्द्रनीलं महानीलं वैडूर्यमथ सस्यकम् ।।
इन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा।
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतिरसं द्विज।।
स्फटिकं राजवर्त च तथा राजमयं शुभम्।
सौगंधिकं तथा सख्यं शंखब्रह्ममयं तथा।।
गोमेधं रुधिराक्षं च तथा बल्लातकं द्विज।
धूलीमरकतं चैव तुक्तूकं शेषमेव च।।
पलुँम् प्रवालकं चैव गिरिवज्रं च भार्गव।
भुजगेशमणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम्।।
टिटिभंच तु तापिच्छं भ्रामरं च तथोत्पलम्। वि०धर्मो०, द्वितीय खण्ड अ०-१३-१५

३- मुक्ताफलं हीरकं च वैदूर्यं पद्मरागकम् पुष्परागं च गोमेदं ।
नीलं गारूतमतं तथा प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव।। भा०प्र० नि०- श्लो०-१६८-१६६

६- रत्नविज्ञान-

रत्नविज्ञान में पं० राधाकृष्ण पराशर ने १८ प्रकार के रत्नों का उल्लेख किया है। ये रत्न हैं-हीरा, मोती, प्रवाल, माणिक्य, नीलम, पन्ना, वैदूर्य, फिरोजा, राजावर्त, वैक्रान्त, पुलक, अकीक, काच- भीष्ममणि, दुग्धपाषाण, अम्बर, तृणकान्त गोमेद, और पुखराज । इन रत्नों का विस्तार से विवेचन किया गया है ।[1]

३- रत्नों के विभिन्न नाम, गुण, प्रकृति एवं लक्षण-

१- हीरा- संस्कृत भाषा में हीरे को हीरक, वज्र, मणिवर, कुलिश, भार्गव प्रिय अमेद्य, चन्द्रादि कहा जाता है ।[2]

हिन्दी में हीरा, बगंला में हीरक, मराठी में हिरा, गुजराती में हिरो तथा अंग्रेज़ी में 'Diamond' कहा गया है। अतः भिन्न-भिन्न भाषाओं में हीरे के भिन्न-भिन्न नाम बताए गए हैं ।

हीरा अन्य रत्नों की अपेक्षा अधिक मुल्यवान् बताया गया है एवं अपने प्राकृतिक गुणों के कारण अधिक प्रसिद्ध माना गया है । भारत में ही सर्वप्रथम हीरे पर पहल बनाने का काम १६वीं शाताब्दी से आजतक चलता आ रहा है । सर्वप्रथम भारतियों ने ही इसका ज्ञान विश्व को कराया । आज विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि हीरा पृथ्वी के गर्भ में पृथ्वी का बोझ कोयले पर पड़ने से स्वयं बन जाता है। कृत्रिम हीरे को भी वैज्ञानिकों ने बनाने के प्रयत्न किए किन्तु वे असफल रहे ।[3]

भारत में हीरे की भस्म का औषधि के रूप में भी प्रयोग होता है। किन्तु वेद्यों का मानना है कि हीरे की कणि या हीरे का चूरा नहीं खाना चाहिए क्योंकि इसको खाने से मृत्यु हो जाती है।[4]

हीरे का मूल्य तथा उसकी पहचान गुण-दोष तथा रंग-रूप के आधार पर की जाती है । दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील इत्यादि में मिलने वाले हीरे का मूल्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किया जाता है। हीरे को काटने तथा बनाने का काम वर्तमान समय में सबसे अधिकतर हालैंड, बेल्जियम, भारत तथा अमेरिका में होता है ।[5]

१-र०वि०, पृ०-६-१२

१- हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रोमणिवरुच सः। भा० प्र० नि०- पृ० ५०२, श्लो०-१७०

२-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०- ३३

३-द्रष्टव्य तदेव पृ० -३३

४-द्रष्टव्य तदेव पृ० -३४

शास्त्र ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के हीरों के जो देवता बताए गए हैं वे इस प्रकार से हैं-

१- हीरे के देवता-

छः कोण वाले सफेद हीरे का देवता इन्द्र, सर्पाकार मुख वाले हीरे का देवता यम,कदली काण्ड के समान (नील,पीत) वर्ण वाले हीरे का देवता विष्णु और सामान्य रूप से सब प्रकार के हीरे का देवता विष्णु को ही माना गया है । स्त्री के भग के समान आकृति वाले हीरे का देवता वरुण है। कर्णिकार पुष्प के समान,सिंघाडे के समान (त्रिभुजा कार) या बाघ के नेत्र के समान हीरे का देवता अग्नि तथा अशोक के पुष्प के समानवर्ण वाले हीरे का देवता वायव्य है। नदी के प्रवाह, खान, प्रकीर्णक (जिस भूमि में मणि होती है- समुद्र आदि) यह तीन हीरों की उत्पति के आकर हैं ।[1]

रंग के अनुसार ही हीरों में देवताओं के विग्रहों का निश्चय किया गया है। वर्ण को ध्यान में रखकर ही हीरों का विभाजन करना चाहिए । हरित, श्वेत, पीत, पिंगल, श्याम तथा ताम्रवर्ण के हीरे स्वभावतः सुन्दर होते हैं। उन हीरों के क्रमानुसार विष्णु,इन्द्र, अग्नि, यम, और मरुत देव प्रतिष्ठित रहते हैं ।[2]

२- हीरे के प्रकृतिक गुण-

प्राचीन समय में प्राकृतिक रूप में प्राप्त होने वाले हीरे प्रायः स्फटिकवत स्वच्छ शुभ्र हुआ करते थे । कहीं पर हीरों को वर्णयुक्त भी पाया गया है। हीरे को कुछ और रंगों में भी देखा गया है जैसे नीला, भूरा, श्याम , बैगंनी, सरदई , पिंगल, अरुण आदि अनेक रंगों में देखा गया है । प्रकृति में पाया जाने वाला हीरा प्रायः षट् पहलू , अष्टपहलू युक्त या डली कनी के रूप पाया जाता है । कुछ हीरे गोल आकार में भी पाए गए हैं ।[3]

१- ऐन्द्रं षडश्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च।
कदलीकाण्ड निकाशं वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम्।।
वारुणमबलागुह्योपमं भवेत् कर्णिकार पुष्पनिभम्।
श्रृंगाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षिनिभं च हौतभुजम्।।
वायव्यं च यवोपम मशोककुसुमप्रभं समुद्दिष्टम्।
स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकर सम्भवस्त्रिविधः।। बृ० सं० ८०/ ८-१०

२- वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपिविग्रहः प्रोक्तः
वर्णेभ्यश्च विभागः कार्य्यो वर्णाश्रयादेव।।
होरतश्वेत पीतपिंगश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः ।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपति मरुतां स्वका वर्णाः।। ग०पु० ६८/ २०-२१

३- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०- पृ० ५०४

षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व, षड्धारा, अष्टधारा, द्वादशधारा, उत्तुंग, सम एवं तीक्ष्णाग्र भाग हीरे के प्राकृतिक गुण बताए गए हैं अर्थात् जो हीरा प्रकृति में पाया जाता है वह इन-इन गुणों से युक्त होता है ।[1]

३- हीरे के प्रकार-

हीरे के पुरुष स्त्री तथा नपुंसक यह तीन भेद होते हैं।

१- पुरूष जाति के हीरे-जो हीरा आठ कोण वाला अथवा छ कोण वाला हो और जिस प्रकार इन्द्रधनुष की परछाई जल में पडने से उसमें सातों रंगों की प्रतिच्छाया दिखाई देती हो उसी प्रकार जब हीरे को जल में रख कर उस में भी सात रंग दिखाई देते हैं वजन में हलका पन हो किन्तु देखने में वह बड़ा दिखाई देता हो तो वह पुरूष हीरा अथवा नर हीरा कहलाता है ।[2]

जो हीरा भलीभाँति गोलाकार फल से पूर्ण तेज से युक्त अत्यन्त बड़ा तथा रेखा और बिदुओं से रहित हो तो वह नर हीरा कहलाता है ।[3]

रस वीर्य्य और विपाक के गुणधर्मानुसार नर हीरा उतम बताया गाया है ।[4]

२-स्त्री जाति के हीरे-

नर हीरे के समस्त गुणों से युक्त होते हुए रेखा तथा बिन्दुओं से युक्त ६ कोण वाला हीरा स्त्री जाति का हीरा कहलाता है ।[5]

जो हीरा चिपटा, गोल और कुछ लम्बा हो वह भी स्त्री जाति का हीरा कहलाता है ।[6]

नारी जाति का हीरा मध्यम श्रेणी का कहलाता है ।

३- नपुंसक जाति के हीरे-

जो हीरा तीन कोणवाला और जिसके कोण मुड़े हुए हों तथा गोल हों, बड़ा और वजन में भारी हो उसे नपुंसक हीरा कहा जाता है ।[7]

१- कोटयः पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेतिच।
उत्तुंग समतीक्ष्णाग्रा वज्रांयाकरजा गुणाः।। ग० पु० अ०- ६८/३०

२- अष्टास्त्रं वाडष्टफलकं षटकोणमतिभासुरम्।
अम्बुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ।। र० वि० पृ०- १६

३- सुवृताः फलसम्पूर्णास्जोयुक्ता बृहत्तराः ।
पुरूषास्ते समाख्याता रेखा बिन्दु विवर्जिताः।। भा० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो०१७३

४- द्रष्टव्य र० वि० पृ०-१५

५- रेखा बिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियाः स्मृताः । भा० प्र० ५०३, श्लो० -१७४

६- तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रञ्च वर्तुलायतम् । र० वि० पृ० १६

७- वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किंचित् गुरु नपुंसकम्।
त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः।। तदेव - - -

विभिन्न प्रकार के गुण-

१- पुरुष जाति के हीरे- श्रेष्ठ तथा रस के बन्धन करने वाले होते हैं।

२- स्त्री जाति के हीरे- शरीर की कान्ति को बढाने वाले एवं विशेष रूप से स्त्रियों के लिए सुखदायी होते हैं।

३-नंपुसक जाति के हीरे- नंपुसक जाति के हीरे वीर्य हीन, काम तथा शक्ति से रहित होते हैं।

उपयोग- स्त्री जाति के हीरे स्त्रियों के लिए, नपुंसक जाति के हीरे नपुंसको के लिए और पुरुष जाति के वीर्यवर्धक हीरे सभी के लिए सदा लाभ देने योग्य होते हैं ।[१]

रूप रंग और भेद के अनुसार हीरा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चार प्रकार का माना गाया है ।[२]

जो हीरा सफेद रंग का होता है वह ब्राह्मण हीरा कहलाता है। जो लाल रंग का होता है वह क्षत्रिय हीरा कहलाता है जो पीले रंग का होता है वह वैश्य वर्ण का होता है। जो हीरा काले वर्ण का होता है वह शुद्रवर्ण होता है ।[३]

४- हीरे के वर्णों का फल-

१- ब्राह्मणवर्ण का हीरा रसायनके लिए उपयोगी तथा सर्वसिद्धियो को देने वाला होता है।

२- क्षत्रियवर्ण का हीरा रोगोंको नष्ट करने वाला एवं जरा तथा मृत्युको दूर करने वाला होता है।

३- वैश्यवर्ण का हीरा धन को देने वाला तथा देह को दृढ़ करने वाला होता है।

४- शुद्रवर्ण का हीरा रोगों का नाश करने वाला तथा आयु को स्थिर रखने वाला अर्थात् शरीर में वृद्धावस्थाजन्य क्षीणता को नहीं आने देने वाला होता है।[४]

१- तेषु स्युः पुरूषाः श्रेष्ठा रसबन्धन कारिणास्त्रिया कुर्वन्ति कायस्यकान्ति क्षीणां सुखप्रदाः ।
नपुंसकास्त्ववीर्या स्युरकामाः सत्ववर्जिताः स्त्रियाः स्त्रीभ्यः दातव्याः कीलबं प्रयोजयेत् ।
सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरूष वीर्यवर्धना।। भा० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो० १७६-१७७

२- श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम्।
ब्रह्मक्षत्रिय विट् शुद्रं स्वस्वर्णफलप्रदम्।। र० वि० पृ०- १५

३- स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रिय स्मृतः पीतो वेश्योऽस्तिः
शुद्रश्चतुवर्णात्मकश्च सः । भा० प्र० नि० पृ० -५०२, श्लो० १७०

४- रसायने मतो विप्र सर्वसिद्धि प्रदायकः ।
क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्यु हरः स्मृतः।।
वैश्योधन प्रदः प्रोक्तस्था देहस्या दार्ढ्यकृत्।
शुद्रो नाशयति व्याधीन् वयः स्तम्भं करोति च।। भ० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो० १७१-१७२

५- हीरे के अनेक आकार प्रकार हैं जैसे बिलाव की आँख के समान, शिरीष पुष्प की आकृति का, गोमूत्र के समान,गोरोचन की भाँति, सर्वथा स्वच्छ, श्वेत मलहती के फूल जैसा और मोतियों की आकृति का बताया गया है ।[1]

जिस प्रकार लोक में निम्न और उच्च वर्ण का वर्ण सांकर्य दोष दुःखदायी बताया गया है उसी प्रकार रत्नों का वर्ण सांकर्य उससे भी अधिक दुःखदायी बताया गया है । केवल वर्णमात्र के द्वारा ही रत्नों का संचय नहीं करना चाहिए क्योंकि जो गुणवान रत्न होता है वही गुण और सम्पत्ति की विभूति होता है । इस के विपरीत गुण हीन रत्न कष्टों को देने वाले होते हैं। जिस हीरेका एक भी श्रृंग टूटा हुआ हो तो गुणवान होने पर भी धनार्थी जनों को उसे अपने घर में नहीं रखना चाहिए ।[2]

६- हीरे में दोषों के लक्षण-

हीरे में १३ प्रकार के दोष पाए जते हैं। यवतार, छाल, खुरदरा, गढा, धब्बा, सुन्न, मैल, धारा बिन्दु,रेखा,कागपद इनमें रक्त आदि दोष हैं। रक्त बिंदु के पत्थरको सबसे निकृष्ट माना गया है।[3]

१- यव दोष- यव दोष चार प्रकार के माने गए हैं।

१- सफेद यव, लाल यव, पीला यव और काला यव । यदि हीरे में जौ की आकृति सा लम्बा और बीच में मोटापन लिए कोई दाग हो तो उसे यव दोष कहते हैं।

२-तार दोष-यदि हीरेमें अभ्रकके समान तारकी जाली दिखाई दे तो उसे तारदोष कहते हैं।

३-छाल दोष- यदि हीरे के किसी भी भाग से (जिस प्रकार अभ्रक से परत निकल जाती है)। छाल उतर गई हो तो उसे छाल दोष कहते हैं ।

४- खुरदरा दोष- यदि हीरे को पहनने से किसी भी प्रकार का खुरदरा पन अंगुलियों को लगे तो उसे खुरदरा दोष कहते हैं।

५- गढ़ा दोष- यह वह दोष है जहाँ हीरे में किसी भी प्रकार का गढ़ा दिखाई दे।

६-सुन्नहीरा-एक प्रकारका दुधियाहीरा जो प्रायः सुन्न अर्थात् जिसमें चमक बहुत कम रहती है।[4]

१- मार्जाराक्षकं च शिरीष पुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलातीपुष्पवर्णं मणि वर्मानामन्यतमवर्णमितिवज्रवर्णाः। अ० शा०,अ०-११, श्लो०- ३

२- अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसंकरः।
ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां संकरो मतः ।।
न च मार्गविभाग मात्रवृत्त्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः ।
गुणवद् गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः ।।
एकमपि यस्य श्रृंगं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा।
गुणवदपि तन्न धार्यं श्रेयोऽर्थि भिर्भवने।। ग० पु०, अ० ६८, श्लो० २५ -२७

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १६

४- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३३

२- मुक्ता-

संस्कृत में मोती के जो विभिन्न नाम हैं वे इस प्रकार हैं। मुक्ता, मौक्तिक, सौम्या, तारा, तारका स्वम्भसारः नीरज, इन्दुरत्न, मुक्ताफल, बिन्दुफल, शुक्ति मणि इत्यादि हैं । हिन्दी में मोती, अरबी तथा फारसी में लोलों, अंग्रेजी में पर्ल(pearl) तथा लेटिन में मार्गारिटा कहा गया है ।[१]

मोती भारत में प्राचीन काल से ही व्यवहार में आता रहा है। अर्थववेद के एक मंत्र में (४/१०/१) यह कृशन नाम से उल्लिखित है। प्राचीन ग्रन्थों में इसकी उत्पत्ति सीप शंख, विद्युत, सर्प के मस्तक, मछली, वाराह, हाथी तथा बांस से बताई है ।

किन्तु आज के विज्ञान ने यह पता लगा लिया है कि सीप के भीतर जब कोई बालू का कण चलाजाता है तब उसका जंतु उसके उपर परत चढाने लगता है, धीरे धीरे इस प्रकार मोती तैयार हो जाता है ।[२]

प्राचीनतम समय से मोती की गणना बहुमुल्य वस्तुओं से समझी जाती रही है। प्राचीन हिन्दी, चीनी आदि प्रसिद्ध जातियों ने अपने मन्दिरों, चैत्यालयों और मसजिदों में देवी देवताओं का श्रृगांर करके उन की शोभा बढ़ाने के निमित्त मुक्ताहारों का प्रयोग अनेकों स्थलों पर किया है ।[३]

१- विभिन्न प्रकार के मुक्ताओं के देवता -

१- अलसी पुष्प के समान श्याम वर्णवाले मोतियों का देवता विष्णु है ।

२- चन्द्र की कान्ति के समान वर्ण वाले मोती का देवता इन्द्र है ।

३- हरिताल के समान कान्तिवाले मोती का देवता वरुण है ।

४- काले वर्ण वाले मोती का देवता यम है।

५- पके हुए अनार के बीज के समान रक्त वर्ण वाले मोती का देवता वायु है।

६- धूम रहित अग्नि या कमल के समान कान्ति वाले मोती का देवता अग्नि है ।[४]

१-द्रष्टव्य र० वि० पृ०- ७०

२-द्रष्टव्य हि० वि० पृ०- ३४

३-द्रष्टव्य र० वि० पृ०- ७५

४- अलसी कुसुम सुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं- - -।
हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति।।
परिणतदाडिमगुलिकागुंजाताम्रं च वायुदैवत्यम्।
निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम्।। बृ० सं०- ८०/ ७-८

२- मुक्ता के प्रकार-

१-गज मुक्ता का लक्षण- पुष्य या श्रवण नक्षत्र में चन्द्र या रविवार में उत्तरायण में रवि और चन्द्र के ग्रहण काल में ऐरावत में उत्पन्न जिन भद्र हाथियों का जन्म होता है उन के दन्त कोष या कुम्भों में बड़े-बड़े अनेक प्रकार के और कान्तियुक्त बहुत से मोती निकलते हैं ।[1]

२- सुअर ओर मछली से उत्पन्न मोती का लक्षण-

सुअर के दन्त मूल में चन्द्र प्रभा के समान कान्ति वाले बहुत गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं तथा मछली से मछली के नेत्र के समान, स्थूल, पवित्र और बहुत से गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं ।[2]

३-मेघ से उत्पन्न मुक्ताफल का लक्षण-

वर्षा कालिक उपल (पत्थर) के समान,सप्तम वायु स्कन्ध से पतित बिजली के समान मेघ से उत्पन्न मोती पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाता है यह मुक्ता में स्थित देवयोनियों द्वारा ही उपर हरण कर लिया जाता है ।[3]

४-नागज मुक्ता का लक्षण-

जो तक्षक और वासुकि के कुल में उत्पन्न स्वेच्छादारी सर्प हैं उनके फनों के अग्र भाग से स्निग्ध, नीली कान्ति वाले मोती निकलते हैं ।[4]

५- बाँस और शंख से उत्पन्न मोती-

बाँस से उत्पन्न मोती कपूर या स्फटिक के समान कान्ति वाला चिपटा और विषम होता है तथा शंख से उत्पन्न मोती चन्द्रमा के समान कान्ति वाला, गोल चमकीला और सुन्दर होता है ।[5]

१- ऐरावतकुलजानां पुष्यश्रवणेदुसूर्यदिवसेषु।
ये चोतरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वीश्च भद्रेभाः ।।
तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु।
बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः।। बृ० सं०- ८०/२०-२१

२- दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं च बहुगुणं वाराहम्।
तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च ।। तदेव- ८०/२३

३- वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमाद्भ्रष्टम्।
ह्रियते किल खाद्दिव्यैस्तोडित्प्रभं मेघं सम्भूतम्।। तदेव- ८०/२४

४- तक्षक वासुकिकुलजः कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम्
स्निग्धा नीलद्युतयो भवति मुक्ताः फणस्यान्ते ।। तदेव- ८०/२५

५- कपूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषम च वेणुजं ज्ञेयम् ।
शंखोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुचिरंच ।। तदेव- ८०/२८

६- शूकर मुक्ता का लक्षण-

एक विशेष प्रकार का सुअर जो कि जंगल में अभय और मस्त होकर घूमता है उसके मस्तिष्क में मोती पाया लाता है ।[1]

आयुर्वेद शास्त्र में भी मोती के आठ प्रकार बताए हैं ।

३- मुक्ता के गुण- आठ प्रकार के मुक्ता के गुण बताये गये हैं -

१- सुतार, २- सुवृत्त, ३- स्वच्छ, ४-निर्मल, ५-धन, ६-स्निग्ध, ७-सुच्छाय, ८-अस्फुटित।

१-सुतार - जिस मोती से तारे के समान दीप्ति एवं रश्मियां प्रस्फुटित होती है उसे 'सुतार' गुण युक्त मोती कहा जाता है।

२- सुवृत्त- जिस मोती में पूरीतरह से गोलाई होती है उसे सुवृत्त कहा जाता है ।

३- स्वच्छ- जो मोती १०या १४ दोषों से रहित होता है उसे स्वच्छमुक्ता कहा जाता है।

४-निर्मल--जो मोती किसी भी प्रकार के दाग आदि चिन्हों से रहित होता है उसे निर्मल मुक्ता कहते हैं।

५- घन- जो मोती तौल में भारी होता है उसे घन मौक्तिक कहते हैं ।

६- स्निग्ध- जिस मोती के हाथ से स्पर्श करने से, चिकनी वस्तु से परिलिप्त है ऐसा प्रतीत हो, तो उस मुक्ता को स्निग्ध मुक्ता कहते हैं।

७-सुच्छाय - जिस मोती को पास से देखने से किसी भी प्रकार की वर्णयुक्त छाया दिखाई देती हो, तो उस मुक्ता को सुच्छायमुक्ता कहते हैं।

८-अस्फुटित-जो मोती व्रण और रेखाओं से रहित होता है उसे अस्फुटितमुक्ता कहते हैं।[2]

१- एकाकी सुसखेन निस्पृहतयायः काननं गाहते,
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम्।। र० वि० पृ०- ८७

२- सुतारंच सुवृतंच स्वच्छंच निर्मलन्तथा।
धनं स्निग्धंच सुच्छायं तथाऽस्फुटितमेव च।।
अष्टौ गुणाः समाख्याता मौक्तिकानामशेषतः ।
तारकद्युतिसंकाशं सुतारामिति कथ्यते।।
सर्वतो वर्तुलं यच्च सुवृतं तन्निगद्यते ।
स्वच्छं दोषविनिर्मुक्तं निर्मलं मलवर्जितम्।।
गुरूत्वं तुलने यस्य तद्धनं मौक्तिकं वरम्।
स्नेहेनैव विलिप्तं यत्र तत् स्निग्धमिति गद्यते।।
छायासमन्वितं यच्च सुच्छायं तन्निगद्यते।
व्रणरेखा विहीनं यत तत्स्यादस्फुटितं शुभम् ।। तदेव- पृ०-६५

४- मुक्ता के दोष-

मोतियों में दस प्रकार के दोष पाए जाते हैं । जिन में से चार दोषों को महादोष की संज्ञा दी गई है । शेष ६ प्रकार के दोषों को मध्य दोष कहा गया है। चार प्रकार के महादोष शुक्तिलग्न, मत्स्याक्ष, जरठ और अतिरिक्त हैं। इनका वर्णन इस प्रकार से है ।

१- शुक्तिलग्न-

जिस मोती में किसी एक स्थान पर शुक्ति के समान अपेक्षा कृत समस्त मोतियों की आभा से बहुत कम आभा दिखाई देती हो, तो इस प्रकार के दोष को शुक्तिलग्न दोष कहाजाता है । शुक्तिलग्न वाले मोती को आभूषणादि के रूप में नहीं पहनना चाहिए ।

२- मत्स्याक्ष- जिस मोती में मछली की आँख के समान किसी एक स्थान पर चिह्न होता है तो इस प्रकार के मोती को 'मत्स्याक्ष' दोषयुक्त मोती कहा जाता है।

३-जरठ- जिस मोती में दोप्ति या आभा का नितान्त अभाव हो एवं हथेली पर रखकर देखने से मोती की प्रतिच्छाया बिल्कुल न बनती हो,उसे 'जरठ' महादोष युक्त मोती कहा जाता है।

४- अतिरिक्त- जिस मोती में प्रवाल या मूंगा के समान छाया बनती हो उस दोष को'अतिरिक्त' महादोष कहा जाता है ।[1]

इन चार महादोषों के अतिरिक्त मुक्ता के ६ और दोष बताए गए हैं। जिन्हें मध्य दोष कहा गया है। इन का वर्णन इस प्रकार से हैं-

५- त्रिवृत्त- त्रिवृत्त दोष उसे कहा जाता है जिस मोती के उपरी स्तर पर तीन गोल रेखाएं चिन्हित हों।

६- अवृत- जो मोती गोल न होकर चिपटा दिखाई देता हो तो उस मोती को अवृत्त दोष से युक्त मानना चाहिए।

७- त्रास - जिन मोतियो में तीन कोने निकले होते हैं, ऐसे मतियों को त्रास दोष से युक्त माना जाता है।

८- कृश- जो मोती गोल न होकर लम्बा होता है। ऐसे मोती कृश दोष से युक्त माने जाते हैं।

९- कृश-पार्श्व- कृशपार्श्व दोष युक्त मोती वह कहलाता है जिसका कोई भाग या किनारा टूट गया हो।

१-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० ९३

१०-पिडिकोपेत- जिन मोतियों में गोलाई न होकर किसी स्थान पर पिडिका या उत्सेध बना हो, उन्हें पिडिकोपेत दोष युक्त माना जाता है ।[1]

मुक्ता के लिए अन्य प्रकार के दोष भी बताए हैं।

१- मसूरक (मसूर की तरह का), २. त्रिपुटक (तीन खूँट वाला), ३ कूर्मक (कछुये के समान), ४. अर्धचन्द्रक (अर्ध चन्द्र की भांति), ५. कंचुकित (मोटे छिलके के समान), ६. यमक (जड़ा हुआ), ७-कर्त्तक(कटा हुआ), ८.खरक(खुरदरा), ६.सिक्थक(दागवाला), १०. कामण्डलुक(कमण्डलु के समान), ११. श्याव (भूरे रंग का), १२. नील (नीले रंगका) और १३ दुर्बिद्ध (अस्थान विध मोती) ।[2]

इस प्रकार से मुक्ता के दोषों का परीक्षण कर लेना चाहिए जिससे पहनने पर कोई हानि न हो ।

३- प्रवाल-

संस्कृत भाषा में प्रवाल को प्रवालक, भौमरत्न, विद्रुम, आब्धिजन्तु आदि कहा जाता है। हिन्दी में मूंगा, बंगला में पला, मराठी में पोवर्ले, गुजराती में परबाला, तेलगु में प्रवालक, अंग्रेजी में रेडकोरल (red-coral),वर्मामें ताड़ा(Toda)तथा चीनी में सउ-ही-ची (sahu-lochi) कहा जाता है ।[3]

प्राचीन काल से ही प्रवाल आभूषणों तथा अन्य सजावटोंके काम में आते रहें हैं। इस में कैल्सियम के तत्व की प्रधानता होने के कारण भारतीय चिकित्सा शास्त्र में इस का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। सब से बड़ा प्रवाल-पर्वत आस्ट्रेलिया का ग्रेट बेरियर रीफ (great Barrier reef) है । इसकी लम्बाई १२०० मील तक है । प्रवाल वहीं पाए जाते हैं जहाँ समुद्र का तापमान शरद् ऋतु में लगभग ७० अंश तापक्रम से कम नहीं होता है। इस से इस बात का ज्ञान होता है कि प्रवाल स्तर(coral reefs) उन्हीं समुद्रों में पाय जाते हैं जो कि बिषुवत् रेखा के दोनों ओर १८०० मील के अन्दर हो ।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -६३

२- मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रं कंचुकितं यमकं कर्तकं खरकं
सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ।। अ०शा०, अ०-११, श्लो०-४

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१२३

४- द्रष्टव्य तदेव, पृ० -१२६

१- प्रवाल के प्रकार-

१-ब्राह्मण प्रवाल- जो प्रवाल खरगोशके रक्त के समान अरुण लाल वर्ण का हो, कोमल, स्निग्ध हो,जिसे देखते ही मन को प्रसन्नता का अनुभव हो तथा सरलता पूर्वक जिसमें छेद किया जा सके उसे ब्राह्मण जाति का प्रवाल कहा जाता है।

२-क्षत्रियप्रवाल- जिस प्रवाल का वर्ण गुडहल के पुष्प के समान, बन्धूक पुष्प के समान, सिंदूर के रंग के समान अथवा अनार के पुष्प के समान हो तो वह प्रवाल क्षत्रिय प्रवाल कहलाता है। क्षत्रियप्रवाल को स्पर्श करने से स्निग्धता का अभाव अनुभव होता है। क्षत्रिय प्रवाल कठोर होता है और उस में छेद कठिनता से होता है।

३-वैश्य प्रवाल- जो प्रवाल वर्ण में पलाश पुष्प के वर्ण के समान, पाटल वर्ण के समान, पंरतु गहरा रंग का और सुचिक्कणता लिए हुए होता है तथा जिसकी कान्ति में क्षीणता होती है ऐसे प्रवाल को वैश्य प्रवाल कहा जाता है।

४-शूद्र प्रवाल- जो प्रवाल लाल कमल के दलों के रंग का, कठोर और स्थायी कान्ति से रहित होता है तथा जिसमें सरलता पूर्वक छेद नहीं किया जा सकता हो ऐसे प्रवाल को शुद्र प्रवाल की संज्ञा दी जाती है ।[१]

२-प्रवाल के गुण-

चिकना, चमकदार तथा एक रंग के दोषरहित प्रवाल को उत्तम माना जाता है ।[२]

३- प्रवाल के दोष-

जो प्रवाल दो रंग वाला गढ्ढे वाला तथा धब्बे वाला हो और जिस प्रवाल में चीर पड़े हुए हों वे दोष युक्त माने जाते हैं ।[३]

४- पद्मराग-

संस्कृत भाष में पद्मराग को माणिक्य, शणिरत्न, लीहितरत्न, कुरूविन्द, रविरत्न आदि कहा जाता है। हिन्दी में माणिक्य, बंगला में माणिक, गुजराती में चुन्नी, मराठी में माणिक, तेलगु में माणिक्यम् तथा अंगेज़ी में रुबी (ruby) कहा जाता है ।[४]

१- ब्रह्मनादिजातिभेदेन तच्चतुर्विधमुच्यते।
अरूणं शशश्क्ताख्यं कोमलं स्निग्धमेव च।।
प्रवालं विप्रजातिः स्यात् सुखवेध्यं मनोरमम्।
जवाबन्धूकसिन्दूरं दाडिमी कुसुम प्रभम्।।
कठिनं दुर्वेध्यमस्निग्धं क्षत्र क्षत्रजातिस्तदुच्यते। र० वि०, पृ०-१२८

२- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ० -३६

३- द्रष्टव्य तदेव ,, ,, ,,

४- द्रष्टव्य र० वि०,पृ० -१६१

माणिक्य लाल कमल के रंग का, कोरुंड जाति का रत्न होता है। इस रत्न से कई प्रकार की आभाएं निकलती हैं, जैसे- कदली के फूल की, अनार के दाने की, अड़हुत के फूल की,पारिजात के फूल की,डण्डी की,गुंजा के फूल की,जलते हुए अंगारे की इत्यादि।

जिस माणिक्य में कुछ हरापन दिखाई देता हो आज वही माणिक्य अच्छा समझा जाता है। स्वास्थ्य सुधार के लिए इसका इतना प्रयोग नहीं समझा जाता है जितना कि आभूषणों केलिए समझा जाता है ।[१]

१- पद्मराग के प्रकार-

१- सौगन्धिक (सायंकाल खिलने वाले सौगिन्धक नामक नीलवर्ण युक्त कमल के समान)

२- पद्मनामक कमल के समान

३- अनवद्यराग (केशर के समन)

४- पारिजात पुष्पक (हरसिंगार पुष्प के समान)

५- बालसूर्यक (उदय होते हुए सूर्य के समान) ।[२]

२- पद्मराग के प्राकृतिक गुण-

१- पद्मराग अनियमित आकृतिमें प्रायः प्रसारित और कोणावृति बिन्दुओं में पाया जाता है।

२-प्राकृतिक पद्मराग के विभिन्न भागों से रंग निकलते है।

३-पद्मराग प्रस्तर की बाह्य सीमा तक सूत्र या तो नितान्त सीधे जाते हैं या कोणाकृति (angular) रूप में पाए जाते हैं ।[३]

३- पद्मराग के गुण-

जो पद्मराग स्निग्धा, कान्ति से दीपित, स्वच्छ कांति से युक्त, भारी सुन्दर आकार वाले, मध्य में प्रभा से युक्त अति लोहित होता है वही श्रेष्ठ गुणों से युक्त पद्मराग माना जाता है ।[४]

४- पद्मराग के दोष-

१- विच्छाय दोष- विच्छाय दोष उस दोष को कहा जाता है जिसमें माणिक्य दीप्ति या चमक से रहित होता है।

२- विरूप दोष - जिस पद्मराग में हाथी दाँत के समान सफेदी और थोड़ा लाल रंग तथा इधर उधर लम्बाई में काला या मटमैला होता है, उस पद्मराग को विरूप दोष से युक्त माना जाता है।

१-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३४

२-सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः । अ० शा०, अ-११, श्लो० -३

३-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८२

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १७०

३-सम्भेद दोष-'सम्भेद दोष' उस दोष को कहा जाता है जिसमें पद्मराग के बीच में ऐसा आभास होता है कि रत्न टूटा हुआ है।

४- कर्कर- जिस पद्मराग को अगुँलियों से स्पर्श करने पर सुचिक्कणता का अनुभव न होकर खरदरेपन का अनुभव होता हो उस पद्मराग को कर्कर दोष से युक्त माना जाता है।

५-अशभिन दोष- जिस पद्मराग को हाथ में लेने पर मन बुद्धि तथा हृदय को प्रसन्नता अनुभव न हो, उसे अशभिन दोष से युक्त मानना चाहिए।

६- कोकिल दोष- माणिक्य में जब शहद की बूंद के समान छाया दिखाई देती हो तब उसे कोकिल दोष से युक्त माना जाता है शहद की बूंद जब किसी अरूणवर्ण कठोर द्रव्य पर डाली जाती है तो वह बूंद सफेद और काली आभा युक्त दिखाई देती है। इसी प्रकार माणिक्य में से सफेद काली छाया युक्त बूंद दिखाई दे तो वह माणिक्य कोकिल दोष से युक्त माना जाता है।

७-जाल दोष- जिस पद्मरागमें आडी या तिरछी रेखाएं निकल कर जाल की तरह दिखाई देती हों उसे जाल दोष कहा जाता है।

८-धूम्रदोष- जिस पद्मराग में धुएं के समान सफेद काली छाई दिखाई देती हो तब उस पद्मराग को धूम्रदोष से युक्त मानना चाहिए ।[1]

५- इन्द्रनील-

संस्कृत भाषा में इन्द्रनील को नीलोत्पल, नीलरत्न महानील एवं शनिरत्न कहा जाता है । हिन्दी में नीलम, बंगला में इन्द्रनील, मराठी में नीलरत्न, फारसी तथा अरबी में याकूत, चीन में चांग श्याक (chang-shyak) और अंग्रेज़ी में sapphire कहा जाता है ।[2]

सबसे उतम श्रेणी का नीलम लंका में पाया जाता है। लंका में यह अन्य रत्नों की ही तरह नदियों के बालू में पाया जाता है । लंका के नीलमों की महत्वपूर्ण बात यह है कि यह जब इनको काटा जाता है तो इनमें से ६ प्रकार के प्रतिबिम्ब निकलते है ।

१- इन्द्रनील के प्राकृतिक गुण- प्रकृति में जो नीलम पाया जाता है उसका रंग अलसी के फूल की भान्ति,नीले कमल के फूल के सदृश और नील कंठ पक्षियों की ग्रीवा की तरह होता है ।[3]

१-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - १७१

२-द्रष्टव्य तदेव पृ० - १८३

३-द्रष्टव्य हि० वि०,पृ० - ३५

२- इन्द्रनील के प्रकार-

१- नीलाबलीय (नीलीधारियों वाला), २. मोर पंख के समान, ३. कलाय पुष्पक (मटर पुष्प के समान),४. महानील (गहरे काले नीले रंग का), ५.जाम्बवाभ (जामुन के समान), ६. जीमूतप्रभ (मेघ के समान), ७. नन्दक (भीतर से श्वेत तथा बाहर से नीला) और ८. स्रवन्मध्य (जलप्रवाह के समान तरलित किरणों वाला) ।[१]

३- इन्द्रनील के गुण-

जो इन्द्रनील कालापन लिए नीले रंग का अथवा गहरे नीले रंग का, वजन में भारी, एक समान छाया वाला, गोल चिकना, नरम और बीच में अत्यधिक चमकदार हो वह उत्तम गुणों से युक्त माना जाता है ।[२]

४-इन्द्रनील के दोष-

जो इन्द्रनील तेजहीन अनेक वर्ण वाला कुछ हिस्से में एक रंग और कुछ में दूसरा रंग, खुरदरा, हलका, चिपटा, बहुत छोटा और जिसके भीतर लाल रंग की आभा दिखाई देती है ऐसा इन्द्रनील दूषित माना जाता है ।[३]

६- मरकत-

संस्कृत भाषा में मरकत को गारुत्मत, अश्मगर्भ हीरूमणिः, गारूण, बुधरत्न और हरिद्रत्न कहा जाता है । हिन्दी में पन्ना, बंगला में पाना, मराठी में पाँचूरत्न, चीनी में बर्मी तथा अंग्रेजी में इमराल्ड (emerald) कहा जाता है ।[४]

भारत वर्ष के बड़े-बड़े नगरों के पन्ने का निर्माण केन्द्र एवं विक्रेय केन्द्र जयपुर को माना गया है । सबसे विख्यात बड़ा पन्ना डेवनशायर पन्ना है जो प्रायः १,४५० रती का है। यह पन्ना दक्षिण अमेरिका के कोलंबिया की खान से निकाला गया था। दूसर बड़ा पन्ना जो कि ब्रिटिश संग्रहालय में है यह १७० रत्ती का माना जाता है ।[५]

१- मरकत के गुण-

जो मरकत हरे रंग का वजन में भारी स्निग्ध, उज्जवल किरणों वाला, तेज युक्त, कर्कशता रहित पन्ना उत्तम गुणों से युक्त माना जाता है ।[६]

१- नीलावलीय इन्द्रनीलः कलाय पुष्पकी महानीली जाम्बवाभो जोमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः । अ० शा०, अ० ११, श्लो० ५

२- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, श्लो० -१८३, पृ०- ५०७

३- द्रष्टव्य तदेव- - - - - -

४-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१८८

५-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ० -३५

६-द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ०-५०५, श्लो० -१८०

जो मरकत सिरस के पुष्प के सदृश लहलहाते धान के खेत की भान्ति, सुग्गे के पंख के रंग की तरह, मोर के पंख की भान्ति, नीम, बबूल तथा बेल की पत्तियों की भान्ति का होता है तथा जिसके हरेरंग में पीलापन हो ऐसा मरकत उत्तम गुणों से युक्त माना गया है । अन्य रत्नों की अपेक्ष यह रत्न मुलायम होता है ।[१]

२- मरकत के दोष-

१-गाँजा- जो मरकत अपारदर्शक और पानीरहित होता है वह गाँजादोष से युक्त माना जाता है।

२- अभ्रकी- वह मरकत जिसमें अभ्रक के समान रंग और चिटकापन हो वह अभ्रकी दोष से युक्त माना जाता हैं।

३-रुखापन- जिस मरकतमें चमक न हो उसे रुखापन दोष युक्त मरकत या रुक्ष मरकत कहते है।

४- चुरचुरा- जिस मरकत में पानी कम हो एवं साधारणता घर्षण करने से भगुरत्व या टुकड़े-टुकड़े हो जाता हो, वह मरकत चुरचुरे दोष से युक्त माना जाता है।

५- गड्ढा- जिन मरकत मणियों में गर्त या गड्ढे पाए जाते हैं वे गड्ढे दोष से युक्त होते हैं।

६- रेखा- जिस मरकत में कृष्णवर्ण अथवा श्वेतवर्ण की रेखा या लाइन दिखाई देती हो वह रेखा दोष से युक्त माना जाता है।

७-चीर- किसी पारदर्शक वस्तु के भग्न हो जानेपर उसे पुनः संयोजित करने पर भी एक खास प्रकार की लाइन दिखाई देती है उसे चीर दोष कहते हैं इसी कारण से सूर्य रश्मिया प्रत्यावर्तित नहीं हो पाती हैं अतः उनकी दीप्ति या पानी नष्ट हो जाता है ।

८- छींटा- जिस मरकत में कृष्ण, पीत, श्वेत अथवा अरुणवर्ण के बिन्दु दिखाई देते हों, उसे छींटा दोष से युक्त माना जाता है।

९- सीनामक्खी- मरकत में कभी कभी पीतवर्ण के समान चमकदार बिन्दु दिखाई देते हैं, ऐसे मरकत को सीनामक्खी दोष से युक्त माना जाता है ।[२]

१-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३५

२-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१९२

७- वैदूर्य-

संस्कृत भाषा में वैदूर्य को विदूररत्न, केतुरत्न, विदूरज, विडालाक्ष आदि कहा जाता है। हिन्दी में वैदूर्य मणि, सूत्रमणि, गुजराती में लसणियो, अरबी में एन अल हिर, चीनी में मो जी गन तथा अंग्रेज़ी में (cats eys) कहा जाता है ।[१]

१- वैदूर्य के प्रकार-

१- उत्पलवर्ण (लाल कमल के समान) , २- शिरीष पुष्पक (शिरीष पुष्प की भांति), ३- उदकवर्ण (जल के समान), ४- वंश राग (बाँस के पत्ते के समान), ५- शुकपत्रवर्ण (तोते के पंख की तरह), ६-पुष्यराग(हलदी के समान), ७-गोमुत्रक (गोमुत्र के समान), ८- गोमेदक (गोरोचन के समान) ।[२]

२- वैदूर्य के गुण-

१- सुतार- जिन वैदूर्य मणियों में निकलती हुई रश्मियां चमकदार, सुन्दर और आकर्षक दिखाई देती हों वे सुतार लक्षण से युक्त मानी जाती हैं।

२- घन- जो रत्न भारीपन लिए होता है वे घन लक्षण से युक्त माना जाता है।

३- अत्यच्छ- कलंक रहित लक्षण से युक्त वैदूर्य निर्मल कहा जाता है।

४- कलिल- जो वैदूर्य ब्रह्मसूत्र (जनेउ के धागे) के समान कलाकृतिमयता और प्रकाश की चंचलता से युक्त होता है वह कलिल वैदूर्य कहलता है।

५- व्यंग- रत्न के प्रत्येक अंग यथा सुतारत्व, धनत्व, निर्मलत्व, कीललत्व आदि गुणों से युक्त लक्षणों को व्यंग कहा जाता है ।[३]

३- वैदूर्य के दोष-

जो वैदूर्य काले रंग का हो, कान्तिहीन, चपटा, वजन में हलका हो तथा खुरदरेपन से युक्त हो और जिसके भीतर लाल रंग की रेखा दिखाई देती हो, वह निकृष्ट माना जाता है ।[४]

८-गोमेद-

संस्कृत भाषा में गोमेद को गोमेदक, राहुरत्न,तृणवर आदि नाम दिए गए हैं। हिन्दी में गोमेदमणि,बंगला में लोहितमणि,अरबी में यमनी, अंग्रेजी में zircon कहा जाता है ।[५]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - २००

२- वैदूयः उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः ~~[illegible]~~
शुक पत्रवर्णः गोमूत्रको गोमेदकः। अ० शा०, अ०- ११, श्लो०-४

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२०४

४- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ० ५०६

५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २७४

गोमेद का उपयोग आभूषणों एवं औषधियों के लिए किया जाता है, परन्तु सबसे अधिक परिमाणमें इसका उपयोग औद्योगिक रूप में ही होता है। गोमेदरत्न की छोटी-२ कणिकाएं घडियों के पुर्जों के संयोजन स्थान पर जोड़ने के काम में लाई जाती हैं । इसी प्रकार 'जिरकोनियम आक्साइड' नामक द्रव पदार्थ लोहे की तरलावस्था में मिलकर लोहे को उत्कृष्ट बनाने में उपयोगी सिद्ध होता है । इस प्रकार से यह रत्न औद्योगिक कामों में अधिक लाया जाता है ।[1]

१- गोमेद के गुण-

जो गोमेद स्वच्छ, गोमूत्र के समान वर्णवाला, उज्लवल (चमकदार)चिकना समतल, भारी निर्मल,कोमल और प्रकाशवान इन गुणों से युक्त होता है,वह उत्तम श्रेणी का माना जाता है ।[2]

२- गोमेद के दोष-

१ रुक्ष, २. छाल, ३. अबरखी, ४. गढ़ा, ५. चीर, ६. धब्बा ७. दुरंगा, ८. श्यामा, ६. रक्तबिन्दु, १०. सफेद बिन्दु, ११.जाल, १२. सुन्न यह बाराह प्रकार के दोष गोमेद में पाये जाते हैं ।[3]

१-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२७६

२-द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ०-५०६

३-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - २७८

रत्नों की उत्पति

१- गरुड पुराण के अनुसार-

गरुड पुराण में रत्नों की उत्पत्ति की एक कथा वर्णित है। कथा इस प्रकार है- प्राचीन कालमें बल नामक एक असुर था। उसने इन्द्रादि सभी देवों को पराजित कर दिया था। उसको जीतने में देवगण समर्थ नहीं थे। अतः असमर्थ देवों ने एक यज्ञ करने का विचार किया और उस असुर के सन्निकट पहुँचकर उस से यज्ञपशु बनने की अभ्यर्थना की। वचनबद्ध बलासुर ने अपना शरीर उन देवों को दान में दे दिया। अतः अपने वाग्वज्रसे वह पशुवत् मारा गया। पशु शरीरवाले उस असुर नें संसार के कल्याणार्थ एवं देवताओं की हितकामनाके कारण यज्ञ में शरीर का परित्याग किया था, उस विशुद्ध कर्म को करने में उसका शरीर भी विशुद्ध सत्वगुण सम्पन्न हो उठा था। अतः उस के शरीर के सभी अंग रत्नों के बीजके रूप में परिणत हो गए। इस प्रकार रत्नों की उत्पत्ति होने पर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागों का उस समय बहुत उपकार हुआ। जब वे सभी विमान के द्वारा उस के शरीर को आकाश मार्ग से ले जाने लगे तो यात्रा वेग के कारण उसका शरीर स्वतः खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वी पर इधर-उधर गिरने लगा।बलासुर के शरीर के अंग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र,नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ कहीं अंशमात्र भी गिरे, वहाँ रत्नों की खान बन गई और उन स्थानों की प्रसिद्धि उन्हीं रत्नों के नाम पर हो गई। पृथिवी की उन खानों में विविध प्रकार के रत्न उत्पन्न होने लगे जो राक्षस,विष, सर्प, व्याधि, तथा विविध प्रकार के पापों को नष्ट करने में समर्थ थे।[1]

१-परीक्षं वच्मि रत्नाना बलो नामासुरोऽभवत्-।
इन्द्रद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते ॥
वख्याजेन पशुतां याचितः स सुरैर्मखे।
बलो ददौ स्वपशुतमतिसत्वोमखे हतः ॥
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रितः।
बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया ॥
तस्य सत्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा ॥
कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्व माययुः ॥
देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम्।
रत्नबीजमयं ग्राहः सुमहानभवत्तदा॥
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा।
यद्यत्पपात रत्नानां बीजं क्वचन किंचन ॥
महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा।
तत्तदाकरतां यातं स्थानमधेय गौरवात्॥
तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघ्नाहानि च।
प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च॥ ग०-पु०,अ०-६८, श्लो० १-८

२- बृहत्संहिता-

बृहत्संहिता में रत्नों की उत्पति के विषय में तीन भिन्न-भिन्न मतों का उल्लेख है । प्रथम मत गरुड पुराण के समान ही बताया गया है कि बल नामक दैत्य से रत्न की उत्पत्ति हुई थी। दूसरेमत में दधीचि मुनि की अस्थियों से रत्नोत्पत्ति मानी गई है। तीसरे मत में पृथ्वी के स्वभाव से उपलों में विचित्रता आकर रत्न हो जाता है ऐसा माना गया है ।[1] कहा भी गया है-

'सम्भूतानि बलाद्देत्याद्रत्नानि विविधानि च।
गतानि नानावर्णत्वमस्थिभ्यो भूमिसंश्रयात् ।।
रत्नानि दधीचिमुनेर्जातानि सहस्रशो लोके।
अस्थिभ्यो भूमिवशात् नानावर्णत्वमागतानि गुणैः'।।[2]

१- हीरे की उत्पत्ति-

पुराणों में हीरे की उत्पत्ति के विषय में दो भिन्न मत बताए गए हैं-

१-प्रथममत के अनुसार- विश्वकर्मा ने इन्द्रके निमित वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि ऋषि का हड्डी से जो वज्र बनाया था, उसको बनाने में हड्डीयों के कण पृथ्वी पर गिरपडे वही काल पाकर हीरे के नाम से विख्यात हो गए ।

२- दूसरेमत के अनुसार- देवता और राक्षसों ने क्षीरसागर में मन्दराचल पर्वत को डाल कर मथन किया था। उस समय वहाँ अमृत उत्पन्न हुआ था, उसको जब देव और दानव पीने लगे तो उनके मुख से जो अमृत की बूँदें पृथ्वी पर गिरी, वे ही सूर्य की किरणों से सूख कर वज्र हो गई ।[3]

३- वैज्ञानिकों के अनुसार- वैज्ञानिकों ने हीरे की उत्पति का आदि कारण कार्बन को सिद्ध किया है । कार्बन कोयला होता है और यह कोयला जब ग्रेफाइट के माध्यम से गुजरता है तो हीरे के रूप में परिणत हो जाता है ।[4]

१- रत्नानि बलाद्देत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि।
केदिद्भुवः स्वभावाद्वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम्।। बृ० सं- ८०/३

२- द्रष्टव्य बृ० सं० पृ०- ४८७

३- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ०- ५०४

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०

हीरे की उत्पति के विषय में यूरोप में किंवदन्ती प्रचलित है। "Diamond of creet "नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। एक समय बृहस्पति ने क्रोध में आकर इस व्यक्ति को श्राप दे दिया कि तू पत्थर हो जा । वह व्यक्ति पत्थर हो गया। इस व्यक्ति के परिवार वालों ने बृहस्पति ग्रह का बहुत ही विधि विधान से पूजन किया कि उनका क्रोध शान्त हो जाए। बृहस्पति ग्रह ने प्रसन्न होकर यह आर्शीवाद दिया कि यह पत्थर योनि से तो मुक्त नहीं होगा किन्तु जो भी इस पत्थरको धारण करेगा वह मेरा 'बृहस्पतिका' अतिप्रिय होगा। (र० वि०- पृ० २०)

२- हीरे के उत्पति स्थान-

गरुड पुराण में हीरे की उत्पत्ति के निम्नलिखित स्थान बताए हैं- हिमांचल, मातंग, सौराष्ट्र,पौण्ड्र,कलिंग, कोसल, वेण्वातट तथा सौवीर नामक आठ भू-भाग हीरे के क्षेत्र हैं ।[1]

हिमालय से उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण के समान, वेणुका के तट से प्राप्त चन्द्रमा के समान, श्वेत सौवीर देशवाले नीलकमल तथा कृष्ण मेघ के समान सौराष्ट्र प्रान्तीय ताम्रवर्ण एवं कलिंग देशीय सोने के समान आभावाले होते हैं। इस प्रकार कौसल देशके हीरों का वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मतंग क्षेत्रवाले हलके पीत वर्ण के होते हैं ।[2]

भूगर्भशास्त्र विशेषज्ञों ने भारतीय भूगर्भ क्षेत्र को हीरे के लिए मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया है-१- दक्षिण भारतीय क्षेत्र, २- मध्य भारतीय क्षेत्र,३- पूर्व भारतीय क्षेत्र ।[3]

२- मुक्ता की उत्पत्ति-

गरुड पुराण में मुक्ता की उत्पत्ति एक पौराणिक कथा के अनुसार बताई गई है । दैत्यराज बलासुर के मुख से जब दन्त पंक्ति विशीर्ण हुई तो वह आकाश में फैली हुई नक्षत्र माला के समान प्रतीत होती थी । विचित्र वर्णोंसे विशुद्ध स्थान रखने वाली वह दन्तावलि जब आकश से समुद्र में गिरी, तो पूर्णिमा के चन्द्र की समस्त षोडश कलाओं को तिरस्कृत करने में समर्थ महागुणसम्पन्न मणिरत्न का निधान हुआ । समुद्र के जलमें उसे शुक्ति में स्थान प्राप्त हुआ और वह सामुद्रिक मुक्ताका प्राचीन बीज बन गया । जिस से अन्य मुक्ताओं का उद्भव हुआ । समुद्र के जिस जल प्रदेशमें सुन्दर रत्न मुक्ता मणि के बीज रूपमें गिरे उसी प्रदेश में वे बीज फैलकर शुक्तियों में स्थित होने के कारण मुक्तामणि (मोती) हो गये ।[4]

१- हैममातंगसौराष्ट्राः पौण्ड्रकालिंगकोशलाः।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्ट विहारकाः।। ४७

२- आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः
स्मृताः सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः।
कालिंगाः कनकावदातरुचिराःप्रीतप्रभाः कोशले श्यामाः
पुण्ड्रभवा मतंग विषये नात्यन्तप्रीतप्रभाः।। ग०पु०,अ०- ६८,श्लो० १७-१८

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- ४

१- नक्षत्रालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयः सु पत्युः पयसां पपात।।
सम्पूर्णचन्दांशुकलापकान्तेर्मणि प्रवेकस्य महागुणस्य।
तच्छुक्तिमत्सुस्थितिमाप बीजमासन् पुराऽप्यन्यभवानियानि ।।
यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्न बीजम्।
तास्मिन्पयस्तोयधरावीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप ।। ग०पु०,अ०- ६९ श्लो० २०-२२

मुक्ता की उत्पति हाथी, जीमूत(मेघ), वराह,शंख, मत्स्य, सर्प शुक्ति तथा बाँस से उत्पन्न मानी गई है ।[1]

वैज्ञानिकों के अनुसार- आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसंधान से इस बात का पता चलता है कि समुद्रमें कई प्रकारके शुक्ति कीट पाए जाते है । इन में जो मुख्य होते हैं वे मुक्ता कीट है। मुक्ताकीट ही शुक्ति के अन्दर मोती का निर्माण करते है । मुक्ताकीट (cesloid worms) की प्रमुख तीन जातियाँ होती हैं । मुक्ता के विभिन्न रूप रंग इन्ही जातियों के कारण बन जाते है ।[2]

२- मोती के उत्पत्ति स्थान- मोती के आठ उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं। सिंहलक देश, परलोक देश, सुराष्ट्र देश, ताम्रपर्णी नदी, पारशव देश, कौबेर देश, पाण्डयवाटक देश, हिम ये आठ मोतियों के आकर स्थान हैं ।[3]

वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता में भी मोती के आठ अत्पति स्थान बताए गए है ।[4]

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में मोती के निम्न उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं-

१- ताम्रपार्णिक (पाण्डय देश की ताम्रपर्णी नदी के संगम पर उत्पन्न),
२- पाण्डय कवाटक (मलय कोटि नामक पर्वत पर उत्पन्न),
३- पाशिक्य (पाटलिपुत्र के समीप पाशिका नामक नदी में उत्पन्न),
४- माहेन्द्र (महेन्द्रगिरि के निकटवर्ती समुद्रतल में उत्पन्न),
५- कार्दमिक (फारस की कर्दमा नामक नदी में उत्पन्न),
६- स्रौतसीय (बर्बर के समीप स्रौतसी नामक नदी में उत्पन्न),
७- ह्रादीय (बर्बर के समीप समुद्र तटवर्ती श्रीघण्ड नमक झील में उत्पन्न),
८- हैमवत (हिमालय पर्वत तर उत्पन्न) ।[5]

३- प्रवाल की उत्पत्ति-

गरुड पुराण में प्रवाल की उत्पत्ति एक पौराणिक कथा के आधार पर ही बताई गई है- जिस समय शेषनाग नें बलासुर (पशु शरीरवाले) के अन्तर्भाग को ग्रहण कर लिया था उसके कुछ समय पश्चात् ही ग्रहण किए हुए अन्तर्भाग को केरलादि देशोंमें छोड़ दिया।

१- द्विपेन्द्रजीमूतवराहशंख-मत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजनि।
मुक्ताफलनि प्रथितानि लोके तेषांच शुक्त्युद्भवमेव भूरि।। ग० पु०, अ०-६८, श्लो० १-२

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- ७७

३- सैंहलिकपारलौकिक सैराष्ट्रिकताम्रपर्णपारशवाः।
कौबेरपाण्डयाहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ।। ग० पु०, अ०-६८, श्लो०- २३

४- द्रष्टव्य बृ० सं०, अ०-८०, श्लो०-२

५- ताम्रर्पिणकं, पाण्डयकवाटकं, पाशिक्यं कौलेयं, चौर्णेयं,
माहेन्द्रंकार्दमिकं, स्रौतसीयं, ह्रमादीयं, हैमवतं च मौक्तिकम्। अ० शा०, अ०-११, श्लो० २

ह्रादीयम

जिन-२ स्थानों में छोड़ा उन-उन स्थानो में महागुण सम्पन्न विद्रुममणियों का जन्म हुआ।[1]

वैज्ञानिकों के अनुसार-

आधुनिक शोधों के आधार पर प्रवाल की उत्पत्ति इस प्रकार से बताई गई है। समुद्र में एक जाति के छोटे-छोटे कीड़े पाए जाते हैं। यह कीड़े पानी में मिली हुई मिट्टी की खाते है । यह मिट्टी इनके पेट में जमा होती रहती है। जब यह जानवर मर जाता है तब उसके पेटमें से मिट्टी का कंकर मूंगा के रूपमें निकलता है। मूंगे का स्वरूप कई प्रकार का बताया गया है । कुछ मूंगे छोटे-छोटे पौधों की डालियों की तरह होते हैं । कुछ मूंगे गोल तथा कुछ टेढे मेढे होते हैं। आस्ट्रेलिया देश के उत्तर पूर्व में मूंगे की इसी प्रकार से दीवारें बनी हुई हैं। जनूबी नमक टापू में भी इस तरह की दीवार बनी हुई पाई गई है ।[2]

२- प्रवाल के उत्पत्ति स्थान-

गरुड पुराण के अनुसार प्रवाल नील देश, देवक तथा रोमक में पाया जाता है।[3]

वैज्ञानिकों के अनुसार- आधुनिक शोधों के अनुसार प्रवाल की उत्पत्ति के जो स्थान बताए हैं वह इस प्रकार हैं- वैज्ञानिकों के अनुसार प्रवाल आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, भूमध्य सागर के पार्श्ववर्ती स्थानों और द्वीपों में पाया जाता है ।[4]

४- पद्मराग की उत्पत्ति-

गरुड पुराण में पद्मराग की उत्पत्ति के लिए जो कथा वर्णित है वह इस प्रकार है- जब भगवान भास्कर दैत्यराज बलासुरके श्रेष्ठ रत्नबीजरूपी शरीरको स्वच्छ नीले आकाश मार्ग से देवलोक को लेजा रहे थे तो उसी समय अंहकार से भरे हुए रावण ने आकर उन्हें आधे मार्ग में ही रोक लिया।भयवश सूर्य ने बलासुर के रत्नबीजरूपी रक्त को लंका देश में ही एक श्रेष्ठ नदी के जल में छोड दिया। उस समय उस नदी के दोनों तट देश की सुन्दर रमणियों के कान्तिमय नितम्बों की प्रतिच्छाया झिलिमलाते हुए अगाध जलसे परिपूर्ण तथा सुपारी की वृक्ष पंक्तियों से आच्छादित अपने दोनों तटों से सुशोभित हो रही थी तथा गंगाके समान पवित्र एवं उत्तम फलों

१- अदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु।
चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः।। ग०पु०, अ०-८०, श्लो०- १

२- द्रष्टव्य- वनो०-चंद्रो०, पृ० ४६-४८

३- द्रष्टव्य ग०पु०, अ०-८०, श्लो०-२

४- द्रष्टव्य र०वि०, पृ० १२२-१२७

को प्रदान करने पर उसी नदी का नाम रावण गंगा पड़ गया। बलासुर के रत्न बीज रूपी रक्तके गिरने से उस नदी के तट पर रत्न राशियाँ आकर एकत्र होने लगी। उसी जलमें पद्मराग नामक रत्न की भी उत्पत्ति हुई ।[१]

बृहत्सांहिता के अनुसार- पद्मराग की उत्पत्ति सौगन्धिक, करूविंदु ,स्फटिक इस तरह के पत्थरों से मानी गई है ।[२]

वैज्ञानिको के अनुसार-आधुनिक रत्न वैज्ञानिकों ने पद्मराग की उत्पत्ति खनिज पदार्थों से बतलाई है। एक की उत्पत्ति कठोर पदार्थों से तथा दूसरे की उत्पत्ति कम कठोर पदार्थों से बताई है ।[३]

१- पद्मराग के उत्पत्ति स्थान-

प्राचीन रत्न ग्रन्थों के अनुसार बताया गया हैकि पद्‌मराग सिंहल के रावण गंगा की तलहटी में मिलता है। इसके अतिरिक्त पद्‌मराग मलय, सुवेल तथा गंधमादन से प्राप्त होता है ।[४]

२- आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार उत्पत्ति स्थान-

रत्न विज्ञान में शोधों के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने बर्मा से प्राप्त होने वाले पद्‌मराग को सर्वोत्तम बताया है। अफगानिस्तान,हिन्द चीन,लंका में मुख्यतः पद्‌मराग प्रधान रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्तरी कारिलोना अमेरिका तथा आस्ट्रलिया आदि स्थानों में भी पद्‌मराग उपलब्ध होते हैं ।[५]

१-द्विवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम्।
असृग् गृहीत्वा चोरतिं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभः स्थलेन।।
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्त्रं वीयर्यावलेपोद्धतमानसेन।
लंकाधिपेनार्द्धपथे समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः।।
तत्सिंहलीचारु नितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाहृदायाम्।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम्।।
ततः प्रभृति सा गंगातुल्यपुव्यफलोदया।
नाम्नारावण गंगेति प्रथिमानमुपागता।।
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तबहिः प्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति।।
तरयास्ततेषूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्‌मरागाः।
सौगन्धिकोत्साः कुरूविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसं प्रसूताः।। ग०पु०,अ०-७०,श्लो०१-६

२- द्रष्टव्य बृ० स०, अ०-८०, श्लो० १
३-द्रष्टव्य र० वि, पृ०- १६२
४-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३४
५-द्रष्टव्य र० वि, पृ०-१६२

५- इन्द्रनील मणि की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार इन्द्रनील की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इस प्रकार है-जब सिंहल देशकी रमीणयाँ अपने कर पल्लव के अग्रभाग से नवीन लवली, कुसुम तथा प्रवाल का चयन कर रही थी उसी समय उस बल नामक असुर के नेत्र गिर पडे।समुद्रकी वह कछार भूमि रत्नके समान चमकने वाले नेत्रों की प्रभा तरंगों से सुशोभित होकर फैल गई । वहीं पर विकसित केतकी नामक पुष्पों से वनों की शोभा बढ़ाने वाले इन्द्रनील मणियो की भूमि पाई जाती है । वहीं पर यह नेत्र पाषाण के रूप में परिवर्तित हो कर इन्द्रनील बन गए ।[1]

१- इन्द्रनील के उत्पत्ति स्थान-

प्राचीन रत्न ग्रन्थों के अनुसार इन्द्रनील की उत्पत्ति विंध्य पर्वत पर,महानदी के किनारे, हिमालय में, काबुल में,आबू पहाड़ पर, जम्मू में, मुलतान में सिंहल द्वीप, कलिंग तथा बर्मा में बताई गई है ।[2]

२- आधुनिक वैज्ञोनकों के अनुसार-

रत्न विज्ञान में आधुनिक वैज्ञानिकों के शोधों के अनुसार बताया गया है कि नीलम बर्मा लंका तथा काश्मीर में पाए जाते हैं। बर्मा में नीलम माणिक्य के साथ पाए जाते हैं। वर्तमान काल में किए गए शोधों के अनुसार यह पता चलता है कि नीलम चन्द्रभागा के निकट पालदार नामक स्थान में भी पाए जाते हैं। विक्टोरिया और न्यू साउथ वैल्समें भी नीलम के विस्तृत क्षेत्र हैं। यूरोप की राइन नदी की घाटी में भी नीलम पाए जाते हैं ।[3]

६- पन्ना (मरकतमणि) की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार पन्ना की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इस प्रकार है-नागराज वासुकि जब असुरपति बलासुर के पित को लेकर अत्यन्त वेग से दो भागों में विभक्त हुए देव लोक में जा रहेथे उस समय वे अपने ही सिर पर अविस्थत मणि से इस तरह सुशोभित हो रहा था मानो अकाश रूपी समुद्र पर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतु के समान हो, उसी समय अपने पंखों से पृथ्वी एवं आकाश को आतंकित करते हुए पक्षिराज गरुड ने सर्पदेव वासुकि पर प्रहारकर दिया। भयभीत वासुकिने सहसा उस रत्न बीज रूप पित को मधुर

१- तत्रैव सिहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबाललवलीकुसुमप्रबाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्तं प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुष्मम्।।
तत्प्रत्ययादुभयशोभन वीचिभासा विस्तारिणी जलनिधरुप्रकच्छभूमिः।
प्रोद्भिन्नकेतकबलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रीलमणि रत्नवती विभाति।।ग०पु०, अ०-७२, श्लो०१-२

१- द्रष्टव्य हि०वि०, पृ०- ३५

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८३

सुस्वादु जल से परिपूर्ण सरिता एवं वृक्षों से सुशोभित तथा पुष्पोंकी नव कलिकाओं की सान्द्र गंध से सुवासित तुरूष्क देश की श्रेष्ठ मणिक्यों से परिपूर्ण पर्वतकी उपत्यकला में छोड़ा। वह पित्त जलधारामें बहता हुआ भगवती महालक्ष्मी के समीप में स्थित समुद्र को प्राप्त करके उसकी तटवर्ती उस भूमि के समीप पहुँच गया जहाँ वह पाषण मणियों में परिवतिर्त हो कर मरकत मणियों का खजाना बन गया ।[1]

वैज्ञानिकों के अनुसार -

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पन्ना खनिज रुप में पाया जाता है। भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में पन्ना खड़ (Rough)रूप में प्राप्त होता है। इस खड़ रूप पन्ने को शुद्ध रूप जौहरियों द्वारा दिया जाता है ।[2]

१- पन्ने के उत्पत्ति स्थान-

रत्न परीक्षा के ग्रन्थों के अनुसार मरकत बरबर प्रदेश में समुद्र के किनारे, रेगिस्तान के पास तथा तुरूक्ष देश में पाया जाता हैं। मगध के हजारीबाग, सिंधु के तीर तथा त्रिकुटगिरि पर पन्ने की उत्पत्ति मानी गई है ।[3]

२- पन्ने की उत्पत्ति आधुनिक पद्धति के अनुसार-

आधुनिक शोधो के अधार पर बताया गया है कि अजमेर के पास 'गुगरा घाटी' नामक स्थान में पन्ने की खान का उद्भव हुआ है । इस खान से उत्पन्न पन्ना उत्कृष्ट श्रेणी का माना गया है। उदयपुर की खानों से भी पन्ने की उत्पत्ति मानी गई है।भीलवाड़ा निकटस्थ 'कालागुमान' गिरिश्रृंगीं के खानों से उत्पन्न पन्ना अधिक उज्जवल हरित वर्ण का माना गया है। विदेशों में पन्ना मुख्य रूप से ब्रेजिल,कोलम्बिया,मेडागास्कर रसिया और साइबेरिया में पाया जाता है। कोलम्बिया का मुजो नामक स्थान पन्ने के लिए प्रसिद्ध है । कोलम्बिया पन्ना दो प्रकार की खानों से उत्पन्न

१-दानवाधिपतेः पित्तमादाय भुजगाधिपः।
द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ।।
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ।
राजतः स महानेकः खण्डसेतुरिवषभौ।।
ततः पक्ष निपातेन संहरन्निव रोदसी।
गरूत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तमुपचक्रमे।।
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसंयुक्ततुरस्कपादपायाम्।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम्।।
तस्यप्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे।
स्थानं क्षितेरुपपयौनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतांजगाम।। ग०पु०, अ०-७१श्लो०१-५

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २६४

३- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०- ३५

माना गया है। एक खान के पन्ने में हीरदाभा अल्प और नील वर्ण भी दिखाई पडता है । दूसरी खान से उत्पन्न पन्ना हरिदाभायुक्त होता है। अफ्रीकन पन्ना बिंदुमय होता है । हरित वर्ण से भी युक्त माना गया है। साइबेरियन से प्राप्त होने वाला पन्ना साधारण श्रेणी का माना जाता है ।[१]

७-वैदूर्य की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार वैदूर्य की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इस प्रकार से हैं- कल्पान्त कालमें क्षुब्द अगाध समुद्र की जलराशि के गम्भीर महानाद के समान दिति पुत्र बलासुर के नाद से विभिन्न वर्णों वाली अत्यन्त सौन्दर्य सम्पन्न वैदूर्य मणियों का बीज उत्पन्न हुआ था । उत्तुंग शिखरों वाले विदूरनामक पर्वतके सन्निकट स्थित कामभूतिक सीमा से मिले हुए क्षेत्र में उस वैदूर्य बीज का अवधान होने से वैदूर्यनाम के रत्नगर्भ की उत्पत्ति हुई ।[२]

१- वैदूर्य के उत्पत्ति स्थान-

वैदूर्य भारत के दक्षिण में सलेम जिले, वेन गंगा के तट में,कामरूप, विंध्याचल, हिमालया, त्रिकूठ श्री पर्वत, महानदी के तट पर, बर्मा, काबुल तथा सुराती देश में बताया गया है ।[३]

२- आधुनिक पद्धति द्वारा वैदूर्य की उत्पत्ति-

आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर यह बताया है कि व्यवसाहिक महत्व के आधार पर वैदूर्यका मुख्य स्थान सीलोन है। ब्राजिल,उत्तर अमेरिका और यूराल पर्वतांचल भी वैदूर्य की उत्पत्ति के प्रमुख स्थान माने गए है। बेणुगंगा, अटक,कटक(उड़ीसा),कामरूप (आसाम) विन्ध्याचल, हिमाचल, त्रिकूट पर्वत, सीलोन, महानदी बरमा और काबुल में भी प्राचीन समय में वैदूर्य की खानें थी । प्राचीन समय में कामभूतिक (आसाम) सीमा के पार्श्ववर्ती स्थानों के विदूर पर्वत के समीप के उत्तुंगों (शिखरों) में एवं पर्वत के पार्श्व से बहने वाली नदियों की बालू तथा छोटे-छोटे प्रस्तरों में वैदूर्य प्राप्त होते थे । आधुनिक खनिज शास्त्रज्ञ भी आसामके मणिपुर नागा पहाडियों और चीनकी भारतीय सीमा संलग्न पर्वत मालाओं में वैदूर्य के होने का अनुमान लगाते हैं ।[४]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १८८-१८९

२- वैदूर्यपुष्परागणां कर्केतनभीष्मकयोः।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ताव्यासेन कथिताद्विज।।
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्रादकल्पाद्दितिजस्य नादात्।
वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्ण शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम्।।
अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुंगरोधसः।
कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत।। ग०पु०, अ०-८३, श्लो० १-२

३- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०, ३६

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०, २००-२०१

73

तृतीय अध्याय

३ रत्न परीक्षा विधि

रत्न परीक्षा विधि

१-गरुड पुराण के अनुसार-

रत्नों के विविध प्रकारों को वज्र (हीरा),मुक्तामणि, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन इत्यादि नाम दिया गया है। विद्वज्जनों ने उनका यह नामकरण इनकी संग्रह योग्यता एवं गुणों की दृष्टि में रखकर किया है । अतः रत्न पारखी विद्वानों को सर्वप्रथम रत्न के आकार, वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मूल्य आदि का ज्ञान तत्सम्बन्धित सभी शास्त्रों के द्वारा विधिवत् प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि कुत्सित लग्न या अनेक कुयोगों से बाधित अशुभ दिनों में जिन रत्नों की उत्पत्ति होती है वे सभी दोष पूर्ण होकर अपनी गुण क्षमता को नष्ट कर देते हैं । जैसा कि गरुड पुराण का कथन है ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह परीक्षा से किए गए अत्यन्त शुद्ध रत्नों को धारण करे अथवा उनका संग्रह करे ।[1]

जो रत्न शास्त्रों के ज्ञाता, कुशल रत्न संग्रही तथा परीक्षा कार्य में दक्ष होते हैं उन्हीं को रत्नों के मुल्य और मात्रा को जानने वाला कहा गया है । अतः रत्नों की परीक्षा इन्हीं रत्न शास्त्रकारों से करवानी चाहिए। रत्नों में वज्र को ही महाप्रभावशाली कहा गया है इसीलिए सर्वप्रथम उसी की परीक्षा को बताया गया है ।[2]

१- हीरक और उस की परीक्षाविधि-

१- गरुड पुराण में उत्तम हीरक का लक्षण एवं उस की परीक्षण विधि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इस संसार में कहीं पर भी अत्यन्त क्षुद्रवर्ण, पार्श्वभागों में भली प्रकारसे परिलक्षित होने वाले रेखा बिन्दु कालिमा, काकपदक और त्रास दोष से रहित, परमाणु की भांति

१- वज्रमुक्ता तु मणयः सपद्मरागाः समरकताः प्रोक्ताः।
अपि चेन्द्रनीलमणि वरवैदूर्याश्च पुष्परागाश्च।।
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम् । —
विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्टं संग्रहे तज्ज्ञैः।।
आकारवर्णा प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्यच।
मूल्यंच रत्नकुशलैविज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम्।।
कुललग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि ।
दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा।।
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानांपृथिवीभुजा।
धारणंसंग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता।। ग० पु०, अ०-६८, श्लो०-६-१३.

१- शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः।
त एव मूल्यमात्राया वेत्तारः परिकीर्त्तिता।।
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहतम।
वज्रपूर्वा परीक्षयं ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्यती।। ग० पु०, अ०-६८,श्लो० १४-१५

अत्यन्त लघु तथा तीक्ष्ण धार से युक्त जो भी वज्र अर्थात् हीरा दिखाई देता है, उसमें निश्चित ही देवता का वास होता है ।[1]

२- हीन हीरक की परीक्षण विधि-

अग्नि के समान स्फुटित, विशीर्ण शृंगभाग से युक्त, मलिन वर्ण वाले तथा मध्य में बिन्दुओं से चिह्नित हीरक को धारण करने पर इन्द्र भी श्रीहीन हो जाते हैं । ऐसे हीरे के संग्रह करने की लालसा नहीं करनी चाहिए। जिस हीरेका एक भाग अस्त्र शस्त्रादि से विदीर्ण क्षत विक्षत शरीर की आभा को प्राप्त हो तथा रक्त वर्ण से चित्रित हो तो वैसा हीरा इच्छा मृत्यु से सम्पन्न शक्तिशाली व्यक्ति को भी शीघ्र मृत्यु से रोक नहीं सकता है ऐसे हीरे को धारण नहीं करना चाहिए ।[2]

३- दुर्लभ-हीरक की परीक्षण विधि-

जो हीरा षटकोण, विशुद्ध, निर्मल, तीक्ष्ण धार वाला लघु, सुन्दर पार्श्वभाग से युक्त और निर्दोष है तथा इन्द्रायुध वज्रके समान स्फुरित,अपनी प्रभा को विकीर्ण करने में समर्थ है तथा अंतरिक्ष भाग में स्थित इस प्रकार का हीरा पृथ्वी लोक में सुलभ नहीं है ।[3]

४- परीक्षण प्रकार-

हीरे के कुशल विशेषज्ञ, लोह, पुष्पराग, गौमेद, वैदूर्य, स्फटिक एवं विविध प्रकार के काँचों से हीरक के प्रतिरूपों का निर्माण कर लेते हैं । अतः विद्वानों को कुशल परोक्षकों से उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिए । क्षार द्रव्य के द्वारा,उल्लेखन विधि से एवं शाण प्रयोगसे होरों का परीक्षण करना चाहिए। पृथ्वीमें जितने भी रत्न हैं अथवा लौहोदिक जितनी अन्य धातुएं हैं,

---

१- अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यकसमं,
रेखाबिन्दु कलंककाकपदकत्रासादिर्भिवर्जितम्।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद्दृश्यते
तस्मिन्देवसमाश्रयोहावितर्यंतीक्ष्णाग्रधारं यदि ।। ग० पु०, ६८/१६

२- स्फुटिताग्निविशीर्णश्रृंग्रदेशं मलवर्णैः पृषतैव्यर्पितमध्यम्।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलासांनकुर्य्यात्।।
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितकोचित्रम्।
न तत्र कुर्य्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्द मृत्योरपि जीवितान्तम्।। तदेव- - - श्लो० २८-२६

३- षटकोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं वर्णान्वितं लघु सुपार्श्वमपेतदोषम्।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेवंविधं भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम्।। तदेव- - श्लो०-३१

हीरा उन सब में चिह्नाङ्कन कर सकता है । किन्तु अन्य कोई भी रत्न या धातु हीरे में चिह्न करने में समर्थ नहीं है ।[1]

गुरूता समस्त रत्नों के महत्व का कारण है फिर भी रत्नशास्त्रज्ञ हीरे के विषय में इस निर्देश के विपरीत ही कहते हैं । पुष्परागादि जाति विशेष के रत्न दूसरी जाति के रत्न को काट सकते हैं । किन्तु हीरक एवं कुरूवृन्द अपनी ही जाति के रत्न को काट सकते हैं। हीरेसे ही हीरा कट सकता है, अन्य रत्नोंसे हीरे को काटा नहीं जा सकता है।[2]

स्वभाविक हीरे के अतिरिक्त हीरक तथा मुक्तादि जितने प्रकार के रत्न हैं। उनमें से किसी भी रत्न की प्रभा ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है। मात्र हीरा ही एक ऐसा रत्न है जिसकी प्रभा ऊपर की ओर जाती है ।[3]

४-१- शुभ हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा जल में तैर सके, अभेद्य हो, षटकोण हो, इन्द्रधनुष के समान निर्मल प्रभा से युक्त ही हल्का तथा सूर्य के समान तेजस्वी हो अथवा तोते के पंखों के समान वर्णवाला हो, स्निग्ध हो, कान्तिमान तथा विभक्त हो इस प्रकार के लक्षणों से युक्त हीरा श्रेष्ठ तथा शुभ माना जाता है ।[4]

जो हीरा किसी वस्तु से न टूटे जो स्निग्ध एवं लघु हो और जल पर तैरता रहे तथा बिजली, अग्नि या इन्द्रधनुष के समान हो वह शुभ अथवा श्रेष्ठ माना गया है।[5]

१- अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
वैदूर्य्यस्फटिकाभ्यांच काचैश्चापि पृथग्विधैः।।
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वादिभः सुपरीक्षकैः
क्षारेल्लेरवनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम्।।
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते।। ग० पु०, अ०-६८, श्लो० ३१,४४-४६

२- गुरूता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम् ।
वज्रे तां वैपरीत्येन सूरयः परिचक्षते ।।
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरूविन्दाः।
वज्रैर्वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम्।। तदेव - - - श्लो० ४७-४८

३- वज्राणि मुक्तामणयो येच्र केचन जातयः ।
न तेषां प्रतिबिद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी।।
तिर्य्यक्क्षतत्वात्केषचित्कचिद्यादि दृश्यते।
तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते ।। तदेव - - - श्लो० ४९-५०

केषाञ्चित् कथञ्चिद्यादि

४- अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च यत्।
षटकोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभम्।। अ० पु०, अ०-२४६, श्लो०- ६

५- सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्।
तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम्।। बृ० स०- अ०- ८०, श्लो०- १४

५- अशुभ हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा काकपद के समान चिह्न वाला, मक्खी के समान चिह्न वाला, केश के समान रेखा रूप चिह्न वाला, धातुओं से युक्त, कंकड से विद्ध, लक्षण से दूना कोण वाला, आग से जला, मलिन, कान्तिहीन, जर्जर हीरा शुभदायी नहीं होता है ।[1]

पानी के बुलबुले के समान आगे से फटा चिपटा और वासी फल के समान लम्बा हीरा शुभ देने वाला नहीं होता । इन दोष युक्त हीरों का मूल्य पूर्वोक्त मूल्य से अष्टमांश हो जाता है।[2]

६- उत्तम हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा मोटा, वजनी, धन की चोट सहने वाला, समकोण पानी से भरे पीतल के वर्तन में उसके हिलाने से लकीरें डाल देने वाला, चर्खे में लगे तकवे की तरह घूमने वाला और चमकदार हीरा उत्तम कोटि का होता है ।[3]

२- हीरे की परीक्षण विधि के अन्य उपाय-

१- सूर्य प्रकाश का हीरे पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। यदि हीरेको कुछ समय तक सूर्यताप में रखकर फिर उसे अंधेरे कमरे में लाया जाए तो उस से सातों रंगों की किरणें प्रस्फुटित होने लगती हैं। स्वच्छ श्वेत रंग के अलावा रंगदार हीरों पर सूर्य का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कभी-कभी उनका रंग गायब हो जाता है ।[4]

२- हीरे को पहचानने का सुगम उपाय उसकी कठोरता है । इस का विशिष्ट गुरुत्व ३०५२ है । उष्णता से इसका प्रसार बहुत कम हो जाता है। अत्यन्त शीतल जल में से निकाल कर यादि अत्यन्त उष्ण जलमें रखा जाए तो इसका परिमाण १.० से १.००००० हो जाता है । इसका सब से अधिक धनत्व ४२.३ होता है और इसके नीचे यह फैलने लगता है ।[5]

३- हीरे के द्वारा समस्त जवाहरात नीलम आदि रत्न काटे जा सकते हैं। हीरा स्वयं किसी रत्नसे खरोचा नहीं जा सकता है। हीरेसे काँच किसी भी आकृति में काटा जा सकता है।[6]

१- काकपदमक्षिकाकेशधातुयुक्तानि शर्करैर्विद्धम्।
द्विगुणाश्रि दग्ध कलुष त्रस्तविशीर्णानि न शुभानि ।। बृ० स०- अ०-८०, श्लो०-१५

२- यानि च बदबुददलिताग्रचिपिटवासी फलप्रदीर्घाणि।
सर्वेषां चैतेषां मूल्याद्भागोऽष्मों हानिः।। तदेव- - - - श्लो०-१६

३- स्थूलं स्निग्धं गुरू प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखि
तुर्कभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम्। अ० शा०, अ०-११, श्लो०- ४

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २३

५- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- २४

६- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- २४

३- हीरे की वैज्ञानिक परीक्षण विधि-

वैज्ञानिकों ने असली और नकली हीरे एवं उत्तम तथा निकृष्ट श्रेणी के हीरों का परीक्षण तथा उसके रंग रूप की पहचान के लिए नवीनतम वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा परीक्षण बताए हैं-

१-डायमण्डोस्कोप- इस वैज्ञानिक यंत्र के द्वारा हीरों के दाग रंग-रूप तथा उनकी कटाई- छँटाई के विषय का परिज्ञान होता है।

२- कलरमीटर- विशेषतः इस यंत्रके द्वारा हीरेके रंग का ज्ञान होता है। पुराने कलरमीटर से केवल हीरे के ७ ही रंगों का विवेचन किया जाता था, परंतु नवीन कलरमीटर से हीरे के १३ प्रकार के रंगों का परिज्ञान हो जाता है ।

३- डायमोलाइट- इस यंत्र द्वारा मास्टर स्टोन के साथ हीरेके रंग और चमक का मिलान किया जाता है। इस यंत्र के द्वारा हीरे पर प्रकाश डालकर भीतरी रंगों का अध्ययन किया जाता है ।[1]

२- मुक्ता की परीक्षण विधि-

१- मुक्ताशास्त्रियों का मत है कि मुक्ताओं में मात्र एक ही ऐसी मुक्ता होती है, जिनको रत्न पद पर अधिष्ठित किया जा सकता है । वह शुक्ति से उत्पन्न होने वाली मुक्ता है । यह सुचिकादि यन्त्रों से वेध्य होती है। शेष मुक्ताएँ अवेध्य होती हैं ।[2]

२- सिंहल देश के कुशलजनों का मानना है कि जो मुक्ता श्वेत काँच के समान हो, स्वर्ण जटित हो तथा रत्न शस्त्रज्ञ के अनुसार सुपरीक्षित होने के कारण कष्ट का निवारण करने वाली हो ऐसे रस विशेष में शोधित मुक्ता शरीर का अंलकार होती है ।[3]

१- स्वभाविक मुक्ता की परीक्षण विधि-

यदि किसी मुक्ताके कृत्रिम होने का संन्देह हो तो उसको लवणमिश्रित, उष्ण, स्नेह द्रव्य में एक रात रख कर सूखे वस्त्र में वेष्टित करके यथा योग्य धान्य के साथ उसका मर्दन करें । ऐसा करने से यादि उसमें विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वभाविक मुक्ता ही मानना चाहिए ।[4]

१- द्रष्टव्य रत्न वि०, पृ०- २७

२- तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाव्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः।। ग० प०, अ०-६६, श्लो०-२

३- श्वेतकाचसमं तारं हेमांशशतयोजितम्।
रसमध्ये प्रधार्य्येत मौक्तिकं देहभूषणम्
एवं हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः ।। तदेव- अ०-६८, श्लो० ३८

४- यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके ।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले।।
ब्रीहिभिर्मदनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम्।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम्।। तदेव- अ०-६८, श्लो० ३६-४०

२- उत्तम मुक्ता की परीक्षण विधि-

जो मुक्ता मोटा,गोल तलरहित, दीप्ति वाला, श्वेत वजनी, चिकना और स्थान पर विधा हुआ मोती ही उत्तम कोटि का होता है ।[1]

१- मोतियों को चावलों के छिलकों में रगड़कर उन्हें गोमूत्र से प्रक्षालन करने पर यदि उनमें कोई भी विकृति उत्पन्न नहीं होती है तो वे उत्तम कोटि के मोती कहलाते हैं ।[2]

२- असली मोती दाँतसे सरलता पूर्वक टूट जाता है। कृत्रिम मोती को आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता है ।[3]

३- मुक्ता की वैज्ञानिक परीक्षण विधि-

यदि असली मोती को गन्धकाम्ल (sulphuric acid)में थोड़ी देर डूबो दिया जाए तो उस मोती की कान्ति नष्ट हो जाती हैं जबकि कृत्रिम मोतियों का गन्धकाम्ल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।[4]

३- पद्मराग परीक्षण-

१- श्रेष्ठ तथा उत्तम पद्मराग की परीक्षण विधि- श्रेष्ठ पद्मराग मणियों में वर्णाधिक्य गुरूता, स्निग्धता, समता निर्मलता, पारदर्शिता, तेजास्विता एवं महत्ता जैसे गुण पाए जाते हैं। जिन मणियों में कर्कराह, छिद्र, मल, प्रभाहीनता, परूषता तथा वर्ण विहीनता होती है, वे सभी जातीय गुणों के रहने पर प्रशस्त नहीं मानी जाती हैं ।[5]

जो पद्मराग ताम्रिका (गुंजा) के वर्ण को धारण करता है। तुष (बहेड़ा) के समान मध्य में पूर्णता से युक्त(गोलाकार) होता है तथा स्नेह से प्रदिग्ध (स्वभावतः स्नेहिल) होता है और अत्यन्त घिसने के कारण कान्तिविहीन हो जाता है, मस्तक-संघर्षण अथवा हाथों की अँगुलियों के स्पर्श से जिसके पार्श्व भाग काले हो जाते हैं हाथ में लेकर बार-बार

१- स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरू स्निग्धं देश विद्धं च प्रशस्तम्। अ०शा०-११,श्लो०-१

२- विमर्दितं शलितुषैर्गोमूत्रेण पटुना भृशम।
यन्नेति विकृतिं किंचित्र् तन्मौक्तिकमकृत्रिमम् ।। र० वि०, पृ०-८६

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -८६

४- द्रष्टव्य तदेव --पृ० -८६

५- वर्णाधिक्यं गुरूत्वंच स्निग्धता समताच्छता।
अर्चिष्मता महत्ता च मणीनां गुणसंग्रहः।।
ये कर्कराच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ताः परूषा विवर्णाः।
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानतो जातिगुणैः समस्तैः।। ग० पु० अ०- ७०, श्लो०-१७-१८

ऊपर की ओर उछालने पर जो मणि प्रत्येक बार एक ही वर्ण को धारण करती है वह सभी गुणों में श्रेष्ठ तथा उत्तम होती है ।[1] जो पद्मराग अरुणिमा से युक्त तथा अत्यन्त निर्मल होते हैं वे पद्मराग उत्तम कहे जाते हैं ।[2]

१- पद्मराग परीक्षण की अन्य विधियाँ-

१- जिस पद्मराग को प्रातः काल सूर्य के सामने रखते ही उसमें से लाल रंग की किरणें चारों तरफ बिखरने लगती हों वह माणिक्य उत्तम गुणों वाला समझा जाता है ।[3]

२- सौ गुने दूधमें माणिक डालते ही यदि दूध लाल दिखाई देने लगजाता हो अथवा लाल- लाल किरणें दिखाई देने लगती हों तो वह उत्तम माणिक कहलाता है।[4]

३- महाघोर अन्धकार में माणिक को रखते ही यदि सूर्य की आभा के समान प्रकाशित होता हो तो उसे श्रेष्ठ माणिक समझना चाहिए ।[5]

४- कमल की पंखड़ियों में रखने से यदि माणिक उसी समय प्रकाशित हो तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिए। ऐसा माणिक देवताओं को भी दुर्लभ है। ऐसा माणिक सम्पूर्ण कष्टों की दूर करता है और सम्पूर्ण सम्पत्ति को देने वाला होता है ।[6]

५- प्रातः काल में सूर्य के सामने एक दर्पण पर माणिक को रखने से यदि दर्पण नीचे की तरफ छाया भाग में भी किरणें दिखाई दे तो वह उत्तम माणिक कहलाता है ।[7]

१- श्री पूर्णकं दीप्तिविनाकृतत्वाद्विजाति लिंगाश्रय एवं भेदः।
यस्ताम्रिकां पुष्यति पद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्यः।।
स्नेहप्रदिग्धः प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्टः प्रजहाति दीप्तिम्।
आक्रान्तमूर्द्धा च प्रति तथांगुलिभ्यां यः कालिकां पार्श्वगतां बिभर्ति ।।
संप्राप्य चोत्क्षिप्य यथानुवृत्ति बिभर्तियः सर्वगुणानतीव। ग० पु०, अ०-७०,श्लो०-२३,२४,२५

२- द्रष्टव्य अ० पु० अ० २४६, श्लो०-११

३- बालार्ककरसंस्पर्शाद्यः शिखां लोहितां वमेत्।
रंचभेदाश्रयं वापि स महागुण उच्यते।। र० वि०, पृ०- १६६

४- दुग्धे शतगुणे क्षिप्तो रंजयेद्यः समन्ततः।
वमेच्छिखां लोहितां वा पद्मरागः स उत्तमः।। तदेव- " " "

५- अन्धकारे महाघोरे यो न्यस्तः सन्महामणिः।
प्रकाशयति सूर्याभः सश्रेष्ठः पद्मरागकः।। तदेव- " " "

६- पद्मकोशेषु यो न्यस्तः प्रकाशयति तत्क्षणात्।
पद्मरागकरो ह्येष देवानामपि दुर्लभः ।। तदेव- " " "

७- सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वसम्पत्तिदायकः।
बालार्काभिमुखं कृत्वा दर्पणे धारयेन्मणिम्।। तदेव- " " "

६- यदि माणिक को पत्थर पर घिसे पत्थर घिसजाए परंतु माणिक न घिसे और उसका वजन भी न घटे एवं घिसने से उसकी शोभा बन जाए तो उस माणिक को शुद्ध जाति वाला समझना चाहिए ।[1]

२- पद्मराग का वैज्ञानिक परीक्षण-

यदि किसी भी पद्मराग के कृत्रिम होने का सन्देह हो तो उसे बर्फ के टुकड़े के पास रखकर उसकी ध्वनि द्वारा उसका परीक्षण किया जा सकता है यदि ध्वनि हुई तो वह असली पद्मराग होगा अन्यथा नकली ।[2]

४- मरकत मणि परीक्षण-

१- श्रेष्ठ मरकतमणि की परीक्षण विधि- जो मणि अत्यन्त हरित वर्ण वाली, कोमल, कान्तिवाली, जटिल, मध्यभाग में सुवर्ण-चूर्ण से परिपूर्ण दिखाई देती है तथा जो अपने स्थान विशेष के गुणों से समन्वित, समान कान्ति वाली उत्तम तथा सूर्य की किरणों के स्पर्श से अपनी प्रभा के द्वारा सभी स्थानों को आलोकित करती है तथा हरितभाव को छोड़कर जिसके मध्य भाग में एक समुज्जवल कान्ति विद्यमान रहती है और जो अपनी नवनवौदित प्रभाराशि से नवीन निकले हुए हरित तृण की कान्ति को तिरस्कृत करती है और जो देखने मात्र से ही लोगोंके मन को अत्याधिक आहलादित करने में समर्थ होती है ऐसी मरकत मणि श्रेष्ठ तथा गुणवती मानी जाती है ।[3]

जो मरकत मणि सुवर्ण चूर्ण के समान सूक्ष्म बिन्दुओं से विभूषित होती हो । वह श्रेष्ठ बताई गई है ।[4]

१- तत्र कान्तिविभागेन छायाभागं विनिर्दिशेत्।
अप्रणश्यति सन्देहे शिलायां परिघ्र्षयेत्।। र० वि०, पृ०- १६६

२- द्रष्टव्य- र० वि०, पृ०- १६७

३- अत्यन्त हरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलंच ।
कांचनचूर्णस्याऽन्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च।।
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण।
सवितुः करसंस्पर्शच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्तया।।
हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः।
अचिरप्रभाप्रातश्चद्वलसमन्विता भाति।।
यच्च मनसः प्रसादं विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम्।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः।। ग० पु०- ७२/१२-१५

४- शुकपक्ष निभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा।
स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैमरकतश्च बिन्दुभिः।। अ० पु०-२४६/ १०

जो पन्ना हरे रंग का भारी, चिकनापन लिए हुए, उज्जवल किरणावलि युक्त, सुचिक्कण एवं पारभासक-इस प्रकार के सात गुणों वाला हो तो उसे उत्तम प्रकार का पन्ना कहा जाता है । बिन्दुमय हरे रंग का अथवा अन्य रंगों का भी पन्ना होता है । बिन्दुमय हरे रंग का पन्ना सर्वोत्तम होता है ।[1]

१- मरकत मणि का वैज्ञानिक परीक्षण-

१- श्री वोहलर, हीमिस्टर एवं ग्रेवाइल विलियम्स आदि वैज्ञानिकों ने यह सिद्धकर दिया है कि पन्ने को अत्यधिक उष्णता प्रदान करने से वह अपने प्रकृतिकहरितमा रंग का परित्याग नही करता है।

२- पन्ना परीक्षक यंत्र द्वारा (EmeraldTester) द्वारा पन्ने का परीक्षण करने से प्राकृतिक पन्ने का रंग हरीतिमा के स्थान पर अरूणिमा मय (लाल) दिखाई देता है ।[2]

५- इन्द्रनील परीक्षण-

१- श्रेष्ठ तथा उत्तम इन्द्रनील की परीक्षण विधि-

सौगुणा अधिक परिमाण वाले दूध में रखने पर भी जिसकी सान्द्रय वर्ण की कान्ति से वह दूध स्वयं नीलवर्ण का हो जाता है, उसी को महानील मणि कहते हैं ।[3]

जो इन्द्रनील दुग्ध में रखने पर अत्यधिक प्रकाशित एवं सुशोभित होता है,वह उत्तम इन्द्रनील होता है ।[4]

जिस इन्द्रनील (नीलम) में अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब न बन सके भारी स्निग्ध स्वच्छ, पिण्डाकृति मृदु एवं दीप्तियुक्त हो तो ऐसे सात लक्षणों से युक्त नीलम श्रेष्ठ समझा जाता है ।[5]

१- हरिवर्णं गुरूस्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम् ।
मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम्।। र०-वि, पृ०-१८६

२- द्रष्टव्य र० वि, पृ०- १८६

३- यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थितः ।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते।। ग० पु०- ७१/१८

४- इन्द्रनीलं शुभं खीरे राजते भ्राजतेऽधिकम्।। अ० पु०- २४६/१४

५- एकच्छायं गुरूस्निग्धं स्वच्छोपण्डितविग्रहम्।
मृदुमध्ये लसज्जयोतिः सप्तधा नीलमुक्तमम्।। र० वि०, पृ० १८४,

६- वैदूर्य परीक्षण-

१- श्रेष्ठ वैदूर्य की परीक्षणविधि- पृथ्वी पर पद्मरागमणियों के जो वर्ण है, उन सभी वर्णों की शोभा का अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन मणियों में जो मणि मयूर कण्ठके सदृश अथवा वंश पत्र के समान वर्णवाली होती है, उस को श्रेष्ठ माना गाया है। जिन मणियों का वर्ण चषक नामक पक्षीके सदृश होता है,उन वैदूर्यमणियों को मणिशास्त्रवेत्ताओं ने प्रशस्त नहीं कहा है।[1] अग्निपुराण में नील एवं रक्त आभावाला वैदूर्य श्रेष्ठ माना गया है। नील एवं रक्त आभावाले वैदूर्य को हाथ में पिरोने योग्य बताया गया है ।[2]

२- उत्कृष्ट वैदूर्यकी परीक्षण विधि-

ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु के पूर्व आकाश में काले, पीले और नीले चमकदार बादल जितने सुन्दर दिखाई देते हैं ठीक इसी प्रकार के वर्ण का वैदूर्य विविध रूप रंग का आभासित होता है। पद्मराग (माणिक्य- Ruby) जिस प्रकार अनेक वर्णों का होता है उसी प्रकार वैदूर्य भी अनेक वर्णोंसे युक्त पाए जाते हैं। सफेदी लिये हुए काले धुएं (Gray)रंग का किंचित् कृष्णाभा लिए हुए वर्ण का वैदूर्य रत्नशास्त्रज्ञों ने उत्कृष्ट माना है ।[3]

७- पुखराज परीक्षण-

१- श्रेष्ठ पुखराज की परीक्षण विधि-

× जो पुखराज हाथ में लेने से भारी प्रतीत हो, स्पर्श करने पर सुचिक्कण, स्थूल, समता लिये हुए, रंग पीले कनेर के रंग के समान अथवा अमलतास के फूल के रंग जैसा पीताभा वर्ण हो-इन आठ गुणों से युक्त पुखराज श्रेष्ठ होता है ।[4]

१- पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ, सर्वास्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्य्य मनुगच्छति।।
तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनीलं यद्वा भवेद्वेणुदलप्रकाशम्।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः।। ग० पु०- ८३/६-७ (73)
२- नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत्। अ० पु०- २४६/१५
३- प्रावृट् पयोद-वरदर्शित-चारुरूपा,
वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासाः ।
पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ।
सर्वांस्तान् वर्णशैभाभिवैदूर्यमनुगचछति।।
सितंच धूम्र संकाशमीषत्कृष्णनिभम्भवेत्
वैदूर्यं नाम तद्रत्नं रत्नविद्भिरुदाहृतम्।। र० वि०, पृ०- २०२-२०३
४- पुष्परागं गुरुस्निग्धं स्वच्छं स्थूलं समं मृदुः।
कर्णिकार प्रसूनाभं मसृणं शुभमष्टधा।। तदेव- पृ०-२१० 210

७- उत्कृष्ट तथा निकृष्टश्रेणी के पुखराज की परीक्षण विधि-

जो पुखराज गोबर में भलीभांति रगड़ने से उसका रंग मटमैला न होकर और भी विशेष समुज्जवल हो उठे तो समझना चाहिए कि यह पुखराज उत्कृष्ट श्रेणी का है। यदि पुखराज तेजहीन, खुरदरा, रुक्ष, पीलेपन के साथ कुछ कालापन लिये हुए विषमाकार हो तो ऐसा पुखराज निकृष्ट माना जाता है।[1]

उत्तम श्रेणीके पुखराज श्वेताभा लिए हुए कुछ पीतवर्ण के होते हैं। पीतवर्ण पुखराज को यदि कुछ आँच दिखाई जाए तो वह अपना रंग बदल देते हैं।[2]

८- विद्रुम परीक्षण-

उत्तम विद्रुम की परीक्षणविधि- जो विद्रुम मणियां खरगोश के रक्त के समान लोहित होती हैं अथवा गुंजाफल या जपा पुष्प की आभा को धारण करती हैं, उन्हें श्रेष्ठ माना गया है।[3]

९- प्रवाल परीक्षण

उत्तम प्रवालकीपरीक्षण विधि- प्रवाल पके कुन्दरु के समान रक्तवर्णाभायुक्त गोल, लम्बे और वक्रता रहित, स्निग्ध, छिद्ररहित मोटे सुदृढ़ उत्तम श्रेणी के होते हैं।

जो प्रवाल श्वेतपीत मिश्रवाला, धूसर-श्वेत, कृष्ण मिश्र वर्णवाला, रुखा ओर सछिद्र, कोटर या खात युक्त, श्वेत, हलका और पतला होता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है। ऐसे प्रवाल को औषध प्रयोग में एवं ग्रह निवृत्ति के कार्य में नहीं लाना चाहिए।[4]

१- निकषोपलसंघृष्टं वर्णं पुष्णाति यन्निजम्।
पुष्पराजन्तु तज्जात्यं मतं रत्नपरीक्षकैः।।
निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतं श्यामं नतोन्नतम्।
कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत्।। र० वि०, पृ०- २६०.

२- द्रष्टव्य- तदेव- पृ०- २६०

३- तत्र प्रधानं शशलोहिताभं गुंजाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम्। ग० पु०- ८०/ २

४- पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम्।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा मतम्।
पाण्डुरं धूसरं रुक्षं सव्रणं कोटरान्वितम्।
निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा।।
आरंगं च जलाक्रान्तिं वक्रं सूक्ष्मं सकोटरम्।
रुक्षं कृष्णं लघु श्वेतं प्रवालमशुभं त्यजेत्।। र० वि०, पृ०-१२६

चतुर्थ अध्याय

रत्न धारण के लाभ

मनुष्य का यदि भाग्योदयकारी ग्रह निर्बल हो तो उसकी बलवृद्धि के लिए अथवा अनिष्टकारी ग्रह प्रबल हो तो उस ग्रह से सम्बन्धित रत्न,उपरत्न संग पत्थर तथा जड़ी को धारण करना लाभप्रद होता है।

रत्नों को धारण करने से पूर्व यह विचार कर लेना आवश्यक होता है कि रत्नों में कोई दोष न हो, क्योंकि शुभ रत्नों को धारण करने से सामान्य जन तथा राजाको शुभफल प्राप्त होता है तथा अशुभ रत्नों को धारण करने से अशुभ फलकी प्राप्ति होती है ।[१]

जिस प्रकार मूर्ति की प्रतिष्ठा मन्त्रों द्वारा की जाती है, उसी प्रकार रत्नों को धारण करते समय मंत्र, जप तथा दशांश हवन करना चाहिए। यदि रत्न लेने का सामर्थ्य न हो तो उसी ग्रह का उपरत्न अथवा यन्त्रादि धारण किये जा सकते है ।

शास्त्रग्रन्थों में रत्नो के धारण से जो लाभ बताए है, वे इस प्रकार से हैं-

१- हीरक- जो मनुष्य तीक्ष्णाग्र, निर्मल तथा दोष शून्य हीरे को धारण करते हैं,वे जीवन पर्यन्त प्रतिदिन, स्त्री सम्पत्ति, पुत्र, धन धान्य और गवादिक पशुओं की श्रीवृद्धि को प्राप्त करते हैं ।[२]

जो राजा विद्युत-तुल्या समुज्जवल एवं चमकते हुए शोभा सम्पन्न हीरे को धारण करता है, वह अपने पराक्रम से दूसरे के प्रताप को आक्रान्त करने में समर्थ होता है तथा वह अपने समस्त सामन्तों को वश में रखकर पृथ्वी का उपभोग करता है ।[३]

वर्णादि अनुसार हीरे को धारण करने से जो लाभ बताए हैं वह इस प्रकार से हैं-

१ ब्राह्मण हीरा - ब्राह्मण हीरा को धारण करने से मनुष्य सात जन्मों तक ब्राह्मण जाति में ही जन्म लेता है। वेदों,पुराणों और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो कर महान प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

२ क्षत्रिय हीरा- जो व्यक्ति ब्राह्मणवर्ण वाले हीरे को धारण करता है,वह शूर वीर होता है तथा युद्ध क्षेत्र में कभी नहीं हारता है। शत्रुओं को सदैव अपने वश में रखता है। उसकी प्रजा सुखी तथा अन्न धन से संतुष्ट रहते हुए आज्ञा का पालन करती है।

१- रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन ।
यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः।। बृ०सं० ८०/१

२- तीक्षग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम्।
वृद्धिस्तं प्रतिदिनमेति यावदायुः स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम्।। ग० पु० ६८/३२

३- सौदामिनीविस्फुरिताभिरामं राजा यथोक्तं कुलिशं दधानः।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्त भुवं भुनक्ति।। तदेव ६८/५२

३ वैश्य हीरा- जो वैश्य वर्ण का हीरा धारण करता है वह धन-जन, स्त्री-पुत्र इत्यादि सुखों से आनन्दित रहते हुए जनता में सम्मान पाता है ।

४ शूद्र हीरा- जो व्यक्ति शूद्र वर्ण का हीरा धारण करता है, वह साधु महात्माओं के साथ रहने वाला तथा बुद्धिमान होता है और परोपकार में उस की सदैव आस्था बनी रहती है। वह व्यक्ति धन-वैभव से युक्त होकर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ा लेता है ।[1]

२- मुक्ता- जो मनुष्य अथवा राजा सर्प मणि (सर्प के फण से मिलने वाली) मुक्ता को धारण करते हैं उनको कभी भी विष या रोग सम्बन्धी दोष नहीं होते हैं । यह मुक्ता अलक्ष्मी का नाश करती है। सर्प मुक्ताको धारण करने वाले मनुष्यों से शत्रु हमेशा भय भीत रहते हैं तथा उनकी सदैव विजय होती है और उनके यश का विस्तार होता है ।[2]

३- प्रवाल- जो मनुष्य सुन्दर कोमल स्निग्ध तथा लाल-लालवर्ण की आभासे युक्त विद्रुम मणि को धारण करते हैं वे निश्चित ही इस संसार में धन-धान्य से सम्पन्न होते हैं और यह मणि विषादिक दुःखों को भी दूर करने वाली है ।[3]

४-पद्मराग- जो राजा पद्मराग मणि को धारण करता है, उसके राज्य में इन्द्र सदैव वर्षा करते हैं और इस मणि के प्रभाव से राजा शत्रुओं का नाश करता है ।[4]

शत्रुओं के बीच निवास करने तथा प्रमाद वृत्ति में आसक्त रहने पर भी विशुद्ध महागुण सम्पन्न होता है । पद्मराग मणि को धारण करने से या उस का स्वामी होने से किसी भी व्यक्ति को आपदाएं स्पर्श तक नहीं कर सकती हैं । जो मनुष्य गुणों से परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागमणि को धारण करता है उसके समीप में उपस्थित होकर दोष संसर्गजनित उपद्रव जैसे कष्ट देने में सक्ष्म नहीं कर पाते हैं ।[5]

५- इन्द्रनील- जो मनुष्य इन्द्रनील को धारण करते है। उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रनील को धारण करने के बाद साधारण से साधारण व्यक्ति भी राजा, महाराजा,नेता, अभिनेता, विद्वान आदि किसी के भी सामने भयभीत नहीं होता है। गोल आकृतिसे युक्त इन्द्रनील को धारण करने से लक्ष्मी, आयु, तथा वैभव की प्राप्ति होती है ।[6]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२०

२- अपहरति विषलक्ष्मीं क्षपयति शत्रून् यशो विकाशयति
भौजंगं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजयदंच।। बृ० सं०- ८०/२७

३- प्रसन्न कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हितत्।
धनधान्यकरं लोके विषर्तिभयनाशनम्।। ग० पु० ८०/३

४- द्रष्टव्य- बृ० सं०- ८०/६

५- सपत्नमध्येऽपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम्।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित्।।
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोवद्रवास्तं समभिद्रवन्ति।
गुणैः समुत्तोजितचारूरागं यः पदमरागं प्रयतो बिभर्त्ति।। ग०पु० ७०/३१-३२

६- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१८६

अनिष्ट ग्रहों द्वारा उत्पन्न रोगों का रत्नों द्वारा शमन

१-सूर्य

जब किसी व्यक्ति को सूर्य ग्रह पाप के रूप में आकर कष्टदायक सिद्ध होता है। अर्थात् सूर्य लग्न कुण्डली, राशि एवं पाप ग्रहों के साथ अनिष्ट व्याधियाँ एवं शिर पीड़ा,प्रमेह, सतत और सन्तत(टाइफाइड) ज्वर, पित्त-रोग, अम्लशूल, हृदय रोग,हैजा, शिरोव्रण विषज व्याधियाँ, दाहकज्वर जैसे रोग उत्पन्न करता है। सूर्य द्वारा उत्पन्न रोगों के शमन के लिए माणिक्य रत्न तांबे या सोने में आयु की अवस्था के अनुसार मात्रामें धारण करने से एवं माणिक्य की भस्मका सेवन करने से सूर्य द्वारा उत्पन्न विकारों एवं रोगों का शमन होता है ।[1]

२- चन्द्र-

जिस व्यक्ति के जन्म लग्न, राशि, दशा आदि में चन्द्रमा की कुदृष्टि पाप ग्रहों के साथ हो अथवा वह निर्बली हो तो गलगण्ड, गण्डमाला,ज्वर विशेषतः कफदूषित जन्य ज्वर,कास, वमन, क्षय, कफजशूल, श्लीपद, जलोदर, आमज पीडा, आमातिसार, हृदयरोग, श्वासकृच्छ्रता आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को यथावस्था के अनुसार यथामात्रा में मोती को धारण करना चहिए एवं मोती भस्म का सेवन करने से चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है ।[2]

३- मंगल-

मंगल ग्रह की कुदृष्टि होने, अरिष्ट स्थान एवं पाप ग्रहों के साथ स्थित होने पर रक्त पित, दाद, भगन्दर, रक्तदोष, प्रमेह, फोडे फुन्सियों का समस्त शरीर में होना, दुष्ट व्रण (कारबंकल), हड्डियों का टूट जाना, बवासीर, रक्तातिसार यांनी खूनी दस्तो का आना, शरीर के किसी भी अंग से रक्त का आ जाना, अग्निदाह का भय, प्रदर रोग, राजयक्ष्मा की खाँसी, बच्चों को कुकर खाँसी, निमोनियां रोग, शोथ रोग, मूत्रावरोध एवं मूत्रकुच्छ्रता, अधिक पसीना आना, रक्तार्श और मधुमेह जैसे रोग उत्पन्न होते हैं । इन रोगों से पीड़ित व्यक्ति को बल, काल तथा आयु के अनुसार उपयुक्त समय में प्रवाल को यथा मात्रा में धारण करना चाहिए

१- शिरः पीडा प्रमेहश्च सततः सन्ततो ज्वरः।
पित्तरोगोऽम्लशूलश्च हृदयरोगश्च विसूचिकाः।।
शिरोव्रणदिकं चैव विषजो दाहकजवरः।
यमारयोगाद्धिका च खौ व्याधिविनिर्णयः।। र० वि०, पृ०- १६६

२- गलगण्डो गण्डमाला ज्वरश्च कफदूषितः।
कासच्छर्दिः क्षयं शूलं श्लीपदश्च जलोदरी।।
आमपीडाऽतिसारश्च हृदयरोगः श्वासकृच्छ्रता।
एते वै चन्द्रजा रोगा मुनिभिः पीरकीर्तिता ।। तदेव- पृ०- ६१

एवं प्रवाल भस्म का सेवन यथामात्रा में करना चाहिए, इससे मंगल ग्रह द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है ।[1]

४-बुध-

जिस व्यक्ति के जन्म लग्न, राशि, दशादि में बुध की कुदृष्टि हो, पाप ग्रहों द्वारा पीड़ित एवं निर्बली होने से त्वचा सम्बन्धी रोग,वायुजन्य पीड़ा,जिह्वा रोग,एक्जीमा आदि त्वचारोग, उन्माद वमनके साथ कफाधिक्य एवं तीनों दोषोंका प्रकोपण हो कर सन्निपातादिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन रोगों से पीड़ित व्यक्ति को उपयुक्त समय में यथावस्था अनुसार पन्ने को धारण करना चहिए एवं उसकी भस्म का प्रयोग करना चाहिए । इससे बुध ग्रह द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है ।[2]

५-बृहस्पति-

जिस व्यक्ति के जन्म लगन एवं राशि से अरिष्ट स्थान में बृहस्पति स्थित हो या गोचर में बृहस्पति के अरिष्ट होने से मास्तिक एवं कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्र आदि प्रत्यंगों में पीड़ा होती है। शरीर अत्यधिक मोटा होने लगता है। मुखरोग, यदा कदा सहसा श्वास- प्रश्वास लेने में अवरोध आदि व्याधियाँ गुरू ग्रह की प्रकोपास्था में होती हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति को उपयुक्त समय में यथा मात्रा में पुखराज को धारण करना चाहिए एवं उसकी भस्म इत्यादि का उपयोग करना चाहिए । जिन व्यक्तियों को वक्षस्थल सम्बन्धी व्याधियाँ यथा राजक्ष्मा, श्वास कास, हृदयरोग आदि एवं वातव्याधियाँ यथा- आमवात, सन्धिवात आदि तथा मेदारोग यथा- मोटापन आदि व्याधियाँ हों तो उन्हें भी पुखराज को उपयुक्त समय में धारण करना चाहिए । इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति को पुखराज एवं पुखराज की भस्म का सेवन करने से बृहस्पति द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होजाता है ।[3]

६- शुक्र-

किसी मनुष्य के जन्म समय में दशा, अन्तर्दशा या गोचर में अशुभ या पाप ग्रहों के साथ शुक्र के स्थित होने से निम्न रोग उत्पन्न होते है नेत्र गुदा, शिश्नेन्द्रिय, प्रमेह, शोथ मूत्र रोग, गुल्म, उपदंश (गनोरिया) स्त्रियों में प्रदर तथा गर्भशय सम्बन्धी शूलादि रोग पंच ज्ञानेन्द्रियों के विकार अण्डकोषवृद्धि (हाइड्रोसील) तथा ज्वरादि रोग । इन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को कम से कम

१- रक्तपित्तोद्भ्वा पीडा दद्रुरोगो भगन्दरः।
रक्तदुष्टिप्रमेहश्च विस्फटिकभयं महत्त्।।
दुष्टव्रणोऽस्थिभगश्च रक्तस्रावोऽग्निजं भयम्।
अर्शो रक्तातिसारश्च व्याधयः कुजसम्भवाः।। र० वि०, पृ०-१३१

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - १६५

१- द्रष्टव्य तदेव- पृ० - १६४

से कम सवा रत्ती का हीरा चाँदी में धारण करना चाहिए तथा हीरा भस्म के योग्य सेवन से भी रोगों की शन्ति होती है। इस प्रकार हीरा धारण करने से अथवा हीरा भस्म के सेवन से शुक्र द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है।[1]

७-शनि -

शनि ग्रह की कुदृष्टि एवं अरिष्ट होने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ दुर्घटनाएँ एवं रोग जैसे राजयक्ष्मा वातोदर, मूर्धारोग, प्लीहोदर, स्नायु पीड़ा, कृमिरोग, पक्षघात, श्वासरोग, जीर्णज्वर, सर्वांगमें वायुजन्य पीड़ा और हाथ पैरों का काँपना इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति को नीलम की भस्म एवं नीलम को उपयुक्त समय में धारण करने से शनि द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है।[2]

८-राहु-

राहु ग्रह की कुदृष्टि एवं कुण्डली में अरिष्ट स्थान में होने से मानव शरीर में अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानासिक व्याधियाँ तथा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यथा-पाण्डुरोग, दीपन, पाचन, रूचिवर्धक, त्वचारोग, अव्यणस्थित बुद्धि जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्तिको यथावस्था अनुसार उपयुक्त समय में गोमेदको धारण करना चाहिए एवं गोमेद की भस्म का सेवन करना चाहिए। इससे राहु के द्वारा उत्पन्न हुए रोगों का शमन होता है।[3]

९-केतु-

केतु ग्रह की प्रकुपितावस्था एवं अरिष्ट होने से इसके द्वारा उत्पन्न व्याधियाँ एवं रोगों में पित्त प्रधान रोग, रक्त विकार, बुद्धि विकार, वायु विकार, पाण्डुरोग, प्रसव पीड़ा, निर्बलता, दीपन और मलमोचन, बच्चों के श्वास प्रश्वास सम्बन्धी रोगों जैसे- नमूनियादि रोगों के शमन एवं केतु द्वारा उत्पन्न विकार के शमन के लिए वेदूर्य रत्न आयु अवस्था के अनुसार उपयुक्त समय में धारण करना चाहिये। वैदूर्य की भस्मका सेवन करने से भी केतु द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है।[4]

१- नेत्रे गुह्य गुदे लिंगे रोगः स्याद् भृगुदोषजः।
प्रमेहः शोथमूत्रंच गुल्मरोगोपदंशकः।।
स्त्रीणां प्रदरपीडा च गर्भशूलादिदूषणम्।
इन्द्रियणां विकारः स्यान्मुष्कवृद्धिर्ज्वरोमहान्।। र० वि०, पृ० -१८

२- यक्ष्मा वातोदरो मूर्च्छास्नायुरुक् कृमिसम्भवाः।
पक्षाघातस्तथा श्वास- प्लीहा- ज्वरेण शीर्णता।।
सर्वत्र वायुजा पीडा हस्तपाद प्रकम्पनम्।
एते हि शनिरोगाः स्युर्विज्ञेया मुनिसम्मताः।। तदेव- पृ०- १८६

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८५

२- द्रष्टव्य तदेव पृ०-२०४,२०६

विविध रोगों में रत्नों की उपकारिता

रत्नों का प्रयोग सर्वप्रथम सजावट तथा आभरण के लिए किया जाता था । बाद में ज्योतिषियों ने इससे होने वाले शुभ-अशुभ फलों का विवेचन किया और चिकित्सादि प्रयोगों में इन रत्नों की भस्मों से अनेक प्रकार के रोगों का उपचार करने लगे । अतः देखा जाता है कि रत्न मानव जीवन में हर तरह से उपयोगी सिद्ध हुए ।

१- रत्नों में सर्वश्रेष्ठ स्थान हीरे को प्राप्त है। रोगों के उपचार में भी हीरक का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । हीरे की भस्म को १/२ रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में अन्य औषधियों के साथ सतत सेवन करने से निम्नीलखित रोग दूर होते हैं-

१- हीरे की भस्म को खदिर चूर्ण के साथ सेवन करने से कुष्ठ रोग दूर होता है।
२- हीरे की भस्म को अडूसा रस के साथ सेवन करने से श्वासकास दूर होता है।
३- हीरे की भस्म को चित्रक क्वाथ के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर दूर होता है।
४- हीरे की भस्म को पिप्पली मधु के साथ सेवन करने से मदाग्नि दूर होती है ।
५- हीरे की भस्म को विदारी कन्द चूर्ण के साथ सेवन करने से बहुमूत्र दूर होता है ।[१]

हीरा भस्म आयु वृद्धि पुष्टि, बल, वीर्य वर्धक शरीर का सुन्दरवर्ण तथा सुख की वृद्धि करने वाला है हीरक भस्म का उचित सेवन सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है ।[२]

बिना शोधन किया हुआ हीरे का यदि सेवन किया जाता है तो वह कुष्ठ, पसिलयों में पीडा, पाण्डु तया पंडगु रोग को उत्पन्न करने वाला होता है अतएव शोधन करके ही भस्म का प्रयोग करना उचित है ।[३]

२- मुक्ता- मुक्ता भस्म से जिन रोगों का उपचर बताया है वे इस प्रकार है-

१- दन्तोद्भेदजन्य ज्वर-

१ रत्ती मुक्ता भस्म में २रत्ती रससिन्दूर को मिश्रित करके आठ मात्रा बना कर प्रातः और सायं दो मात्रा मधु के साथ खाने से बच्चों के दन्तोगमन के समय आने वाला ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

२- फुक्फुस दौर्बल्य- (chroric atrophy of lungs tissue)

१- रत्ती मुक्ताभस्म को ३ रत्ती प्रवाल भस्ममें मिश्रित करके प्रातः सांय मधुके साथ सेवन करनेसे चिरकालिक फुक्फुस दौर्बल्य(फुक्फुसके तन्तुओं का चिरकालिक क्षय) नष्ट होता है।[४]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-३३
२- आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ।
सेवितं सर्वरोगहनं मृतं वज्रं न संशयः।। भ०प्र० नि०, श्लो०-१७६
३- अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा
पाण्डुतां पंगुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत्।। तदैव- श्लो०-१७८, पृ०-५०३
४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १०२

विविध रोगों में रत्नों की उपकारिता

रत्नों का प्रयोग सर्वप्रथम सजावट तथा आभरण के लिए किया जाता था । बाद में ज्योतिषियों ने इससे होने वाले शुभ-अशुभ फलों का विवेचन किया और चिकित्सादि प्रयोगों में इन रत्नों की भस्मों से अनेक प्रकार के रोगों का उपचार करने लगे । अतः देखा जाता है कि रत्न मानव जीवन में हर तरह से उपयोगी सिद्ध हुए ।

१- रत्नों में सर्वश्रेष्ठ स्थान हीरे को प्राप्त है। रोगों के उपचार में भी हीरक का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । हीरे की भस्म को १/२ रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में अन्य औषधियों के साथ सतत सेवन करने से निम्नीलखित रोग दूर होते हैं-

१- हीरे की भस्म को खदिर चूर्ण के साथ सेवन करने से कुष्ठ रोग दूर होता है।
२- हीरे की भस्म को अडूसा रस के साथ सेवन करने से श्वासकास दूर होता है।
३- हीरे की भस्म को चित्रक क्वाथ के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर दूर होता है।
४- हीरे की भस्म को पिप्पली मधु के साथ सेवन करने से मदाग्नि दूर होती है ।
५- हीरे की भस्म को विदारी कन्द चूर्ण के साथ सेवन करने से बहुमूत्र दूर होता है ।[१]

हीरा भस्म आयु वृद्धि पुष्टि, बल, वीर्य वर्धक शरीर का सुन्दरवर्ण तथा सुख की वृद्धि करने वाला है हीरक भस्म का उचित सेवन सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है ।[२]

बिना शोधन किया हुआ हीरे का यदि सेवन किया जाता है तो वह कुष्ठ, पसिलयों में पीडा, पाण्डु तया पंडगु रोग को उत्पन्न करने वाला होता है अतएव शोधन करके ही भस्म का प्रयोग करना उचित है ।[३]

२- मुक्ता- मुक्ता भस्म से जिंन रोगों का उपचर बताया है वे इस प्रकार है-

१- दन्तोद्भेदजन्य ज्वर-

१ रत्ती मुक्ता भस्म में २रत्ती रससिन्दूर को मिश्रित करके आठ मात्रा बना कर प्रातः और सायं दो मात्रा मधु के साथ खाने से बच्चों के दन्तोगमन के समय आने वाला ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

२- फुक्फुस दौर्बल्य- (chroric atrophy of lungs tissue)

१- रत्ती मुक्ताभस्म को ३ रत्ती प्रवाल भस्ममें मिश्रित करके प्रातः सांय मधुके साथ सेवन करनेसे चिरकालिक फुक्फुस दौर्बल्य(फुक्फुसके तन्तुओं का चिरकालिक क्षय) नष्ट होता है।[४]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-३३
२- आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ।
सेवितं सर्वरोगहनं मृतं वज्रं न संशयः।। भ०प्र० नि०, श्लो०-१७६
३- अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा
पाण्डुतां पंगुलत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत्।। तदैव- श्लो०-१७८, पृ०-५०३
४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १०२

३- क्षय रोग-

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक का समभाग लेकर और इस में शुद्ध पारद के बराबर प्रवाल भस्म और इतनी ही मात्रा में मुक्ता भस्म मिलाकर नीबू के रस की भावना में लघु पुट में एक बार फूँक देने तथा २ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से भयंकर क्षय अंग अथवा प्रत्यंगों का दौर्बल्य (Atrophy of only organ) नष्ट होता है ।[1]

४- मुक्तादि वटी-

६ मासे मोती भस्म, कुचला हुआ चूर्ण '२' दाने, सोने के वर्क १ माशे, चाँदी के वर्क '३' माशे, केसर '१' तोला, जावित्री '६' मासा, जायफल '१' तोला, अकरकरा '२' तोला इन सभी द्रव्यों को गुलाब जल में तीन दिन घोटने के उपरान्त गोलियां बनाकर दो-दो गोलियां दूध के साथ सेवन करने से स्मरण शाक्ति प्रबल हो जाती है ।

६- रक्त अतिसार रोग- १/२ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त मात्रा में मुक्ता भस्म में कपूर और जायफल का चूर्ण मिलाकर मधू के साथ सेवन करने से सन्निपातक अतिसार एवं रक्तातिसार जैसे रोग नष्ट होते हैं ।[2]

३- प्रवाल-

आयुर्वेद के मत में प्रवाल (मूंगा) मधुर, अम्ल, कफनाशक, पित्त को दूर करने वाला, वीर्यवर्धक, कांतिजनक, क्षयनाशक, रक्त पित्त को दूर करने वाला, खाँसी को नष्ट करने वाला, दीपन सारक, पाचक, हलका तथा ज्वर, विष, भूतबाधा, उन्माद, पांडुरोग, प्रमेह और नेत्र जेसे विभिन्न रोगों को दूर करता है। प्रवाल सर्व दोष नाशक पांडु, ज्वर, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके निरन्तर सेवन से वीर्य स्तम्भन होता है।[1]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १०२

२- द्रष्टव्य तदेव पृ० -१०२

१- क) द्रष्टव्य वनौ० चंद्रो० पृ०-४६

ख) यूनानी मत -

यूनानी मत में मूंगा दूसरे दर्जे में सर्द और खुशक होता है। यह शक्ति वर्धक और काब्जि है। यूनानी मत में मूंगा दूसरे दर्जे में सर्द और खुशक होता है। यह शक्ति वर्धक और काब्जि है। शहद के साथ इसको देने से अर्धांग, लकवी, कम्पवात और यकृत तथा तिल्ली के रोगी को लाभ होता है। जिस व्यक्ति को मिरगी आती है वह यदि मुंगे की माला पहने तो उसे लाभ होता है। अगर गर्भवती स्त्री इसे अपने पास रखे तो गर्भ सुरक्षित रहता है। बच्चों के गले में लटकाने से बच्चों का नीद में चौंकना बन्द हो जाता है। अगर किसी को मुँह के अन्दर छाले हो लाए तो मूंगे को गुलाब जल में घोटकर मुँह के अन्दर मलने से शीघ्र आराम आता है ।

इब्न जहर के कथन अनुसार ' दिल में जमे खून को मूंगा बिखेर देता है। यह गर्भवती के गर्भ की रक्षा करता है। बच्चे को पेट में गिरने से रोकता है। बच्चे के गले में मूंगा बाँध दियाजाए तो वह उपरी बाँधाओं से सुरक्षित रहता है । वनौ०चन्द्रो० पृ०-४७

२- कुक्कर खांसी नाशक प्रवाल भस्म-

पाँच तोला प्रवाल लेकर उसे कसौदी के पत्तों के रस में खरल कर लेना चाहिए। ज्यों-ज्यों रस सूखता जाए त्यों-त्यों नया रस डालते रहना चाहिए। जब चालीस तोला रस सूख जाए तब उसे सम्पुट में रखकर गजपुट की अग्नि में फूंक देना चाहिए । जिससे सफेद भस्म तैयार हो जाएगी और इस भस्म को '१' रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ खाने से कुक्कर खांसी का नाश होता है ।[1]

३- प्रवाल पिष्टि-

उत्तम शुद्ध प्रवाल को २४ घन्टे तक गुलाब जल में घोटने से प्रवाल पिष्टि तैयार होती है । प्रवाल भस्म के अन्दर कैलशीयम का तत्व बहुत ओधक मात्रा में पाया जाता है। अतः जिन-जिन रोगों में कैलीशयम या कैलीशयम के इंजेक्शन देने की जरूरत होती है, उन रोगों के लिए प्रवाल भस्म लाभदायक होती है ।[2]

४- विभिन्न रोगों में प्रवाल भस्म का उपयोग-

१-खूनी बवासीर-३ मासे घिसे हुए लालचन्दन में एक या दो रत्ती प्रवाल भस्म मिलाकर खाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है ।

२- मूत्रातिसार- ६ मासे काले तिलों के साथ प्रवाल भस्म का सेवन करने से मूत्रातिसार मिटता है।

३-जीर्ण ज्वर- शहद और पीपलके साथ प्रवाल भस्म को चटाने से जीर्ण ज्वर मिटता है।

४-मूत्रकी रुकावट-१ रत्ती मूंगाको पानीमें घिसकर पिलाने से मूत्रकी रुकावट मिटती है।

५-क्षय- पके हुए केले के साथ प्रवाल भस्मका सेवन करने से क्षय रोग में लाभ होता है।

६- खाँसी - प्रवाल भस्म को पानी में रखकर खाने से खाँसी मिटती है।

७- दन्त रोग -प्रवाल के चूर्ण को मज्जन करने से दाँत निर्मल और दृढ होते हैं।

८- मूत्रकृच्छ- त्रिफला और मधु के साथ प्रवाल भस्म कोचाटने से मूत्र कृच्छ में लाभ होता है।

९- सूखी खाँसी- अदरक के रस में मिश्री और प्रवाल भस्म मिलाकर खाने से सूखी खाँसी मिटती है।

१०- घावसे रुधिर का बहना- प्रवाल कों महीन पीसकर घाव पर भुरभुराने से घाव में रुधिर बहना बन्द हो जाता है ।[3]

१- द्रष्टव्य वनौ०चन्द्रो०,पृ० -४७

२- तदैव " " "

३- द्रष्टव्य " " पृ०-४८

४- नीलम-

आयुर्वेद के मत में नीलम की भस्म गर्म कडवी और दमा खाँसी, पित्त, कफ, रक्त के उपद्रव,विषम ज्वर और बवासीर में लाभदायक है। यह वीर्य शक्ति और पाचन शक्ति को बढाती है ।[१]

खाँसी, राजयक्ष्मा, वातोदर, मुर्छारोग, 'प्लीहोदर, स्नायु पीडा, कृमिरोम, पक्षाघात, श्वासरोग, जीर्णज्वर, सर्वांग में वायुज्न्य पीड़ाऔर हाथ पैरों का कांपना इन समस्त रोगों में नीलम भस्म का सेवन करने से लाभ होता है ।[२]

५- पन्ना-

आयुर्वेद के मत में पन्ना शीतल,रुचीकारक, मधुर, पौष्टिक, विषनाशक, वीयवर्धक तथा भूत बाधा और अम्लपित्त को दूर करने वाला होता है । पन्ना ज्वर,वमन,विष, श्वास संताप, मन्दग्नि,बवासीर, पांडुरोग और सूजन को दूर करता है तथा ओज को बनाता है।[३]

६- वैदूर्य-

१- वैदूर्य को धारण करने से पाण्डुरोग में शरीर के पीलेपन को दूर करता है ।

२- प्रसव पीडा में सिर के बालों में बांधने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।

३- बच्चोंके गले में बांधने से श्वास-प्रश्वास सम्बन्धी रोग,जैसे न्युमोनिया रोग नहीं हो पाते हैं ।[४]

७- फिरोजा-

फिरोजा मधुर और कषाय रस प्रधान होता है। दीपन कार्य करता है। स्थावर और जंगम विषों को नष्ट करता है। शरीर का शूल रोग और भूत पिशाच बाधा को नष्ट करता है।[५]

गूर्दे की पथरी को तोड़ता है। आँखो की बीमारी को दूर करता है। फिरोजा को धारण करने से डर दूर हो जाता है। आयुर्वेद मत में फिरोजा कसेला,मधुर होता है। फिरोजा भूतादि दोषों को दूर करता है। उदर शूलादि को नष्ट करता है ।[६]

१- द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो० पृ- २७

क) यूनानी मत - यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गर्म और तीसरे दर्जे में खुश्क है। इसके सेवन से नत्रों की ज्योति बनती है, विष के उपद्रव दूर होते हैं। मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। यह भय और पागलपन दूर करने में लाभदायक है तथा शरीर को प्रसन्न रखती है ।

२- द्रष्टव्य र०वि०,पृ- १८६

३- ,, तदैव, पृ०- २७.

४- द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो०-पृ० ४८

५- पेरोजं सुकृषायं स्यान्मधुरं दीपनं परम्।
स्थावरं जंगमंचैव संयोगाच्च तथा विषम्।।
तत्सर्वं नाशयेच्छ्रीघ्रं शूलं भूतादिदोषजम्। र० वि०, पृ०- २०८

६- द्रष्टव्य वनौ० -चन्द्रो०, पृ०-१४२

८- गोमेद-

आयुर्वेद मत से गोमेद मणि कफ, पित्त नाशक, क्षयरोग को दूर करने वाली, नेत्रों के लिए हितकारी, पाण्डुरोग को नष्ट करने वाली, दीपन, पाचक, रुचिकारक, त्वचा के लिए हितकारी, बुद्धि वर्धक और खांसी को दूर करने वाली होती है ।[१]

९- वैक्रान्त मणि-

वैक्रान्त रसराज है। वैक्रान्त हीरे तथा लोहे के समान शरीर को सुदृढ़ बनाता है। विषों के प्रभाव को नष्ट करता है। ज्वर, कुष्ठ और क्षयरोग का नाश करता है ।[२]

वैक्रान्त षड्रस समन्वित, त्रिदोशनाशक, वीर्य को प्रगाढ़ करने वाला पाण्डु, उदर रोग, ज्वर, श्वास, कास, क्षय और प्रमेह को नष्ट करता है। समस्त महारोगों का नाश करता है। परम बुद्धिवर्धक है ।[३]

१०- काच भीष्ममणि-

भीष्ममणि स्फटिक मणि का ही एक प्रकार है। मुख्यतः इसका प्रयोग रक्तपित्त रोग में एवं ज्वर विशेषतः पित्तज्वर में पिपासाधिक्य हो रुधिराख्यमणि की पिष्टी २से४ रती की मात्रा में देना सद्यः लाभप्रद है ।[४]

रत्नों की भस्मों में अन्य प्रकार की भस्मों के मिश्रण से भी अनेक प्रकार के रोगों का उपचार किया जा सकता है। इन भस्मों से होने वाले रोगों का उपचार इस प्रकार से है-

१- सर्वप्रथम हीरे की भस्ममें अन्य प्रकारकी भस्मों को मिलाकार विभिन्न रोगों का उपचार बताया गया है । स्वर्णमाक्षिक, कान्तलोह, अभ्रक और हीरा भस्म का एक-एक भाग और स्वर्ण भस्म का एक भाग लेकर समस्त द्रव्यों को मिलाकर मुलिका रस की सात दिन तक भावना देकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंकना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। इस रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से बुढापा शीघ्र नहीं आता है और समस्त रोगों का नाश होता है ।[५]

१- द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो०, पृ०- १३३

२- वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः।
विषघ्नों रस राजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत्।।

३- वैक्रान्तस्तु त्रिदोषहनः षड्रसो मेहदाढ्र्यकृत्।
पाण्डूदरज्वरश्वासकासक्षयप्रमेहनुत्।। र० वि०, पृ०-२१८

४- द्रष्टव्य तदेव- पृ०- २४७

५- हेम-माक्षिक-कान्ताभ्रवज्र भस्म प्रवेशयेत्।
रसे सहेम्नि सप्ताहं मूलिकारसमदितम्।।
तां पिष्टिं यन्त्रयोगेन पचेत् पंचामृताहवृयः।
रसोऽयं मधुसर्पिर्भ्यां युक्तः पूर्वाधिको गुणः।। तदेव- पृ० -३३

२- हीरा भस्म, पारद भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म का एक-एक भाग लेकर हरताल को इन चारों को ही बराबर लेकर सहजन, धनूरा, सेहुड मदार का दूध इन सब को एक-एक भावना देनी चाहिए।इस के बाद वाकुची के तेल की सात दिन तक भावना देनी चाहिए। इस प्रकार के मिश्रण को एक मात्रा में लेने से सब प्रकार के कुष्ट नष्ट हो जाते है।[1]

३- हीरा, स्वर्ण, पारद, ताम्र, कान्तलोह, स्वर्ण माक्षिक, हरताल, सुरमा (काला) तुत्थक (तूतिया), समुद्रफेन,सेन्धान नमक, काला नमक, बिड, नमक, समुद्र नमक, काच नमक-इन समस्त द्रव्यों की भस्मों को समान मात्रा में लेकर थूहर के दूध को एक दिन तक भावना पर जो द्रव्य तैयार होता है,उसे एक माशा की मात्रा में अद्रक के रस के साथ सेवन करने से कम्पवायु, धनुर्वात, (टेटनस) और दण्डापतानकावस्था में देनेसे यह सभी अवस्थाएं नष्ट हो जाती हैं ।[2]

४- अभ्रक भस्म, हीरा भस्म, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, मुण्डलोह, तीक्ष्णलौह, कान्तलोह, शुद्ध हरताल इन सब की भस्मों का समान भाग लेकर मिलाने के बाद द्रव्य को अच्छी तरह खरल कर लेना चाहिए । अब इस में शुद्ध पारद समस्त द्रव्य के बराबर मिलाकर एक दिन खरल कर के दूसरे दिन से अम्लवर्ग की ओषधियों के रस से तीन दिन तक भावना देनी चाहिए । प्रगाढ होने पर गोला बनाकर सुखा लेने के बाद उस अन्ध मूषामें तबतक रखना चाहिए जब तक कि उसकी गोली न बन जाए । इस गोली को एक वर्ष तक सदैव मुख में रखने से बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता है और मृत्यु भी शीघ्र नहीं होती है । बुद्धि में विशेष

१- रसणन्धकताम्राभ्रकं क्षारांस्त्रिन्रि वरुणावृषम्।
अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम्।।
चांगेर्या हस्तिशुण्ड्याश्च रस पिष्टं पचेत् पुटे।
भक्षयित्वा ततो गुंजा ग्रहण्यां कांजिकं पिबेत्।।
कक्तिशूले च कासे च मन्दाग्नावार्द्रकद्रवम्।
अम्लपिते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम्।। र० वि०, पृ०-३४

२- सूतहाटकवज्रार्ककान्त भस्म समाक्षिकम्।
तालं नीलांजनं तुत्थमाब्धफेनं समांशकम्।।
पंचानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत्।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रूद्ध्वा तं मूधरे पुटेत्।।
माषैकं चार्द्रकद्रावेलैहयेदव्रत्वानलम्।
पिपलीमूलजं क्वाथं सपिप्पल्यनुपाययेत्।।
धनुर्वातं दण्डवातं श्रृंखलाकम्वातनुत्।। तदेव - - -

प्रखरता आकर वाक्शक्ति बढ़ जाती है। आयु विशेष बढ जाती है ।[1]

५- हीरा भस्म के दो भाग, स्वर्णभस्म के तीन भाग,पारदभस्म के ६ भाग-इन तीनों को मिलाकर गोखरू के क्वाथ में एक दिन भावना देनी चाहिए । देश काल और आयु को देखकर १ रत्ती की मात्रा में इसके सेवन से ज्वर राजयक्ष्मा, साध्य अथवा असाध्य क्षय इन-इन प्रकार के रोगों का नाश होता है। थूहर की जड़ के चूर्ण को अनुपान के रूप में देना चाहिए ।[2]

६- अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, कान्तलोह, स्वर्ण और पारद भस्म की समान मात्रा लेकर खरल करके जलवेतस के स्वरस में पकाना चाहिए । गाढ़ा होने पर शराव-सम्पुट में बन्द कर फूंक देना चाहिए । स्वांग शीत होने पर औषध द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। शरीर में किसी भी स्थान से शस्त्रादि की चोट से रक्तस्राव बन्द हो जाता है । विष रोग नष्ट होते हैं। यदि इस रस को एक वर्ष तक मुख में धारण किया जाए तो आयु स्थिर हो कर वली पलित नहीं पाता है ।[3]

१- व्योमसत्वं मृतं वज्र स्वर्णतारार्कमुण्डकम्।
तीक्ष्णं कान्तं तालकं च शुद्ध कृत्वा विमिश्रयेत्।।
सूक्ष्मचूर्णं समं सर्वं चूर्णांशं शुद्धपारदम्।
त्रिदिनं चाम्लवर्गेण मर्दितं चान्धितं धमेत्।।
विद्यावागीश्वरी ख्याता गुटिका वत्सरावधि। २०
यस्य वक्त्रे स्थिता तस्य जरा मृत्युर्न विद्यते।।
कर्ष जयोतिष्मती तैलं क्रामणार्थं पिबेत्सदा।
वाक्पतिर्जायते धीरो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्।। र० वि० पृ० -३५

२- वज्रहाटकसूतानां भस्मैषां द्वित्रिषट्क्रमात्।
त्रिकण्ठकरसैर्भाव्यं दिनान्ते तद्विचूर्णयेत्।।
गुंजामात्रं प्रयोक्तव्यं सज्वरे राजयक्ष्मणि।
स्नुहीमूलं च जम्बीरद्रवैः स्यादनुपानकम्।।
साध्यसाध्यक्षयं हन्ति ह्यनुपानं मृगाकंवत्।
अयमग्निरसं खदेत त्रिनिकं राजयक्ष्मनुत्।। तदेव

३- अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्त हेम समम्।
सर्वाणि समभागनि सूतयुक्तानि कारयेत्।।
गोलकं ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा।
ततस्तं पुटपाककेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः।।
वाह्रो चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिकोत्तमा।।
स्तम्भयेच्छस्त्रसंघात विषरोगाश्च नाशयेत।
अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयः स्तम्भं करोतिच्।
वलीपलितहन्त्रीयं गुटिका सुरसरी ।। तदेव, पृ० ३६

प्रखरता आकर वाक्शक्ति बढ़ जाती है। आयु विशेष बढ जाती है ।[1]

५- हीरा भस्म के दो भाग, स्वर्णभस्म के तीन भाग,पारदभस्म के ६ भाग-इन तीनों को मिलाकर गोखरू के क्वाथ में एक दिन भावना देनी चाहिए । देश काल और आयु को देखकर १ रत्ती की मात्रा में इसके सेवन से ज्वर राजयक्ष्मा, साध्य अथवा असाध्य क्षय इन-इन प्रकार के रोगों का नाश होता है। थूहर की जड़ के चूर्ण को अनुपान के रूप में देना चाहिए ।[2]

६- अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, कान्तलोह, स्वर्ण और पारद भस्म की समान मात्रा लेकर खरल करके जलवेतस के स्वरस में पकाना चाहिए । गाढ़ा होने पर शराव-सम्पुट में बन्द कर फूंक देना चाहिए । स्वांग शीत होने पर औषध द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। शरीर में किसी भी स्थान से शस्त्रादि की चोट से रक्तस्राव बन्द हो जाता है । विष रोग नष्ट होते हैं। यदि इस रस को एक वर्ष तक मुख में धारण किया जाए तो आयु स्थिर हो कर वली पलित नहीं पाता है ।[3]

१- व्योमसत्वं मृतं वज्र स्वर्णतारार्कमुण्डकम्।
तीक्ष्णं कान्तं तालकं च शुद्ध कृत्वा विमिश्रयेत्।।
सूक्ष्मचूर्णं समं सर्वं चूर्णांशं शुद्धपारदम्।
त्रिदिनं चाम्लवर्गेण मर्दितं चान्धितं धमेत्।।
विद्यावागीश्वरी ख्याता गुटिका वत्सरावधि। २०
यस्य वक्त्रे स्थिता तस्य जरा मृत्युर्न विद्यते।।
कर्ष जयोतिष्मती तैलं क्रामणार्थं पिबेत्सदा।
वाक्पतिर्जायते धीरो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्।। र० वि० पृ० -३५

२- वज्रहाटकसूतानां भस्मैषां द्वित्रिषट्क्रमात्।
त्रिकण्ढकरसैर्भाव्यं दिनान्ते तद्विचूर्णयेत्।।
गुंजामात्रं प्रयोक्तव्यं सज्वरे राजयक्ष्मणि।
स्नुहीमूलं च जम्बीरद्रवैः स्यादनुपानकम्।।
साध्यसाध्यक्षयं हन्ति ह्यनुपानं मृगाकंवत्।
अयमग्निरसं खदेत त्रिनिकं राजयक्ष्मनुत्।। तदेव

३- अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्त हेम समम्।
सर्वाणि समभागनि सूतयुक्तानि कारयेत्।।
गोलकं ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा।
ततस्तं पुटपाककेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः।।
वाह्ये चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिकोत्तमा।।
स्तम्भयेच्छस्त्रसंघात विषरोगाश्च नाशयेत।
अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयः स्तम्भं करोतिच्।
वलीपलितहन्त्रीयं गुटिका सुरसरी ।। तदेव, पृ०- ३६

७- हीरा भस्म १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग,ताम्रभस्म ३भाग, पारद भस्म ४भाग, अभ्रक भस्म ४भाग, लोह भस्म ६ भाग, इन सभी प्रकार की भस्मों को मसूली के रस में घोट लेना चाहिए । घोटने के बाद इसे कांच की कूपी में रखकर तीनदिन तक बालुका यंत्र में पाचन करना चाहिए। कांचकी कूपी में से समस्त द्रव्य को निकालकार मसूली क्वाथ, स्नुही दुग्ध एवं मदार (अर्क) दुग्ध में प्रत्येक के साथ एक-एक दिन घोटकर भूघर यंत्र द्वारा एक प्रकार तक अग्नि देनी चाहिए । इसके बाद इसमें मिश्री, पीपल,दालचीनी, इलायची तथा तेजपत्र के समान (औषध के बराबर) चूर्ण अच्छी प्रकार से घोट लेना चाहिए । इस रस की एक माश की मात्रा में पीपल, मसूली, मुलेठी और केवांच बीज के चूर्ण को दो तोला की मात्रा में मिलाकर गोदंग्ध एवं मिश्री के साथ सेवन करने से तथा मकरध्वज के साथ सेवन करने से सहस्रों रमणियों के साथ सम्भोग किया जा सकता है और अधिक दिन सेवन से शरीर पुष्ट हो जाता है ।[1]

८- हीरा और पारद की भस्म का समान भाग तथा स्वर्ण भस्म का चतुर्थ भाग लेकर इन सभी को हंसपाद के स्वरस में एक दिन तक भावना देनी चाहिए । गाढ़ा हो जाने पर गोला बनाकर सुखा लेने के बाद शराव सम्पुट में बन्दकर गजपुट द्वारा पका लेना चाहिए, स्वांगशीत हो जाने पर औषध द्रव्य को फिर से पुनः मदार के दूध की एक दिन भावना देकर गाढ़ा हो जाने पर गोला बनाकर सुखा लेना चाहिए । शराव सम्पुट में बन्दकर गजपुट द्वारा पकाना चाहिए । स्वांगशीत हो जाने के बाद पीसकर छ मास तक इस रस के सेवन से वलीपलित नष्ट होकर आयु की वृद्धि होती है और शरीर दिव्य सुन्दर हो जाता है । स्वांग शीत आयु की वृद्धि होती है और शरीर दिव्य सुन्दर हो जाता है । स्वांगशीत हो जाने के बाद पीसे हुए द्रव्य में चीता, अद्रक, सैन्धव, सोंचर नमक और लोह भस्म इनको समान मात्रा में लेकर खरल करने के

१- वज्रहेमार्कसूताभ्रलोहभस्मक्रमोत्तरम्। (थ)
सर्वंकन्याद्रवैर्मर्द्य शाल्मल्याश्च द्रवैस्त्र्यहम्।।
तद्रुद्ध्वा काचकुप्यन्तर्वालकायाँ त्र्यहं पचेत्।
तत्कल्कं मुशलीक्वाथैर्वज्राकक्षीरसंयुतै।।
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे रुद्ध्वाऽन्तर्भूधरे पुटेत्।
यामादुद्धृत्य संचूर्ण्य सिता कृष्णात्रिजातकै।।
समैः समं विमिश्रयाथ माषैकं भक्षयेत्सदा।
मागधी मुशली यष्टी वानरी बीजकं समम्।।
चूर्णं सिताज्य गौक्षीरैः पलार्धं पाययेदनु।
कामिनीनां सहस्रैकं रममाणो न मुह्यति।।
सेकनाद दृढकायः स्याद्रसोऽयं मकरध्वजः।। र० वि०, पृ०-३७

बाद ही इसका सेवन करना चाहिए ।[1]

६- लोह, अभ्रक, गन्ध, पारद, स्वर्ण और हीरे की भस्म को समान मात्रा में लेकर घृत कुमारी के रस से घोट कर गोला बना लेना चाहिए । इस गोले को एरण्ड पत्र से ढककर कच्चे सूत से बांधकर तीन दिन तक अन्नराशि में दबा देने के बाद इस का चूर्ण बनाकर देश,काल और आयु को देखकर ही मधु और त्रिफला क्वाथके साथ सेवन करने से वृद्धा वस्था शीघ्र न आकर व्याधियाँ नष्ट हो जाती है और सुखोपलब्धि होती हैं इसका सेवन करने से पाँच प्रकार के कास, पाण्डु, हिचकी, हलीमक, व्रण, कफरोग वायुरोग, अग्नि मांद्य, कण्डू, कुष्ट, विसर्प विद्रधि, मुखरोग अपस्मार आदि रोगों का नष्ट करता है ।[2]

१०- हीरा, स्वर्ण और चाँदी भस्म का एक-एक भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म का तीन भाग, अभ्रक और पारद भस्म की ६-६ भाग लेकर इन सबों को मिलाकर घृतमारी के रस में लौह या पत्थर के खरल में अच्छी तरह घोट लेना चाहिए। प्रगाढ़ होने पर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए। इन रस के सेवन से जो रोग किसी और अन्य औषधियों से औषधियों से अच्छे नहीं

१- वज्रपारदयोर्भस्म समभागं प्रकल्पयेत्।
सुतपादं मृतं स्वर्णं सर्वं मर्द्यं दिनावधि।।
हंसपाद्या द्रवैरेव तद्गोलं चान्धितं पुटेत्।
अर्कक्षीरैः पुनर्मर्द्यं तद्वदगजपुट पचेत्।।
भक्षयेत्सर्षपवृध्या यावन्माषं विवर्धयेत्।
शरण्यः साधकानां तु रसोऽयं वज्रपंजरः।।
चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थमृततीक्ष्णसुवर्चलम्।
समं सर्वं सदा चानु भक्षयं स्यातक्षणे हितम्।।
मासषट्कप्रयोगेण जीवेदाचन्द्रतारकम्।
वलीपलितनिर्मुक्तो दिव्यकयो महाबलः ।। र० वि०, पृ० -३८

१- लोहाभ्रौ वलिसूतहाटकविस्तुल्यं कुमारीरसे,
पक्वैरण्डदलैर्निवध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम्।
क्षिप्त्वोदधृत्य विचूर्णितं मधुवरोयुक्तं यथा सात्म्यतः
कृष्णात्रेयविनिर्मितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम्।।
आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वं प्रमेहप्रणुत्।
कासं पंचविधं तथैव तनुगं पाण्डु च हिक्का व्रणम्।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्च्वमन्दानलम्
कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्यांजयेत्।। र० वि०, पृ० -३८

हो पाते है, इस रस के सेवन से रोग नष्ट हो जाते हैं ।[1]

११- हरताल, स्वर्णमाक्षिक, अजमोदा, रोप्यमाक्षिक, कान्तलोह, पीतल, तीक्ष्ण लोह, अभ्रक मण्डुर, हीरा, स्वर्ण और बंग भस्म का एक-एक भाग तथा पारद १२ भाग और गन्धक १२ भाग लेकर दोनों की कजली बना लेनी चाहिए । इस कज्जली में समस्त भस्मों को डालकर बांझ ककोड़े की जड़ सम्भालु के पत्ते मुलेठी,मीठातेलिया, सुहागाभस्म, खूनखराबा, चीता, कलिहारी कालीमिरच, सेठं पीपल और अतीस इन सबों का बराबर २ भाग का चूर्ण मिलाकर महुआ के पुष्पों के रस की भावना देकर २-२ रत्ती को गोलियाँ बनाकर सन्निपात या विषयाप्त अचेतनावस्था में इस रस को मुख द्वारा नस्य अथवा अंजन करने से फोरन चेतनता आ जाती है। सभी प्रकार के विषमज्वरों में इसका प्रयोग किया जाता है।[2]

१२- हीरा भस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग, अभ्रकभ्स्म ३ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग, ताम्र भस्म ५ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ६ भग, मुण्डलोहभस्म ७ भाग,इन सबों को अम्लवर्ण के रसों की तीन दिन तक भावना देनी चाहिए। इस औषध द्रव्यमें सर्जिकाक्षार, टंकण (सुहागा) भस्म, यवक्षार एवं पांचों नमको का एक-२ भाग मिला लेना चाहिए। सम्भालु स्वरस की तीन दिन तक भावना देकर समस्त द्रव्य का अष्टमांश वत्सनाभ(मीठा तेलिया) और अष्ट मांश ही सुहागे की भस्म मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस की एक दिन भावना देने के बाद दो रत्ती की मात्रा में अद्रक रस के साथ सेवन करना चाहिए । सम्भालु मुल चूर्ण और गूगल समान मात्रा में मिलाकर इसका सेवन करने से अनुपान वातज व्याधियों का क्षय होता है। सन्निपात में अद्रक के रस के साथ सेवन करना

१- हीरं सुवर्णं सुमृतं च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम्।
समं मृताभ्रं रससिन्दूरंच निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा।।
खल्ले द्रवेणेव कुमारिकायाः गुंजाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरसे नाम्ना सम्पूज्य सम्यग्गिरिजां दिनेशम्।।
हन्त्यामयात् योगशतैविवर्ज्यानथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जशं विनिर्जित्य सुखं विभाति।। र० वि०, पृ० -३६
जरां

२- तालं ताप्यजगन्धकंच विमलं कान्ताऽऽरतीक्ष्णाभ्रकम,
मण्डूरं कुलिशं सुराऽऽसधनं चैभिः समं सूतकम्।
वन्ध्याकदससिन्धुवारमधुकं श्रृंगीविषं टंकणम्
बोलं चित्रकलांगली रमस्विं विश्वोपकुल्याविषा।।
एभिः सर्वसमांशकैस्सुविधिना बद्ध्वा द्विगुंजावटी
माधूकेन रसेन दोषनिचये तस्यै प्रपाने हिता।
कृत्वा नेत्रयुगेअंजनं च विधिना तत्सन्निपातं
जये द्वैद्यैस्त्यक्तमचेतनं च विषमं ताप हिसर्वोत्थितम्।। तदेव- - -

होता है। सन्निपात में अद्रक के रस के साथ सेवन करना चाहिए । मण्डल कष्ट और वातजरोगों के अलावा समस्त रोगों में अनुपान भेद में दिया जा सकता है ।[1]

१३- हीरा भस्म एक भाग, अभ्रक भस्म दो भाग, स्वर्ण भस्म तीन भाग, ताम्रभस्म चार भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म पाँच भाग, मुण्डलोहभस्म ६ भाग, कालीमिर्च चूर्ण सात भाग इन सभी को तीन दिन तक अम्लवर्गीय औषधियों की भावना देकर इस द्रव्य में यवक्षार, सर्जिकाक्षार और पांचों नमक को (सब मिलाकर आठभाग) डालकर सम्भालु के स्वरस की तीन दिन तक भावना देकर प्रगाढ़ होने पर इस में एक-भाग शुद्ध मीठा तेलिया का चूर्ण और एक भाग सुहागाचूर्ण डालकर और जम्बीरी नीबू के रस की भावना देने के बाद प्रगाढ़ होने पर दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर सम्भालु की जड़ का चूर्ण और शुद्ध गुग्गुल सम मात्रा में लेकर उस में घी मिलाकर एक-एक तोले की गोलियां बना कर लेनी चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में वातकव्टकरस लेने के बाद में एक तोले की गोली अद्रक खरल अथवा घृत के साथ लेने से वातव्याधि और सन्निपात जैसे रोग नष्ट होते हैं ।[2]

१- वज्रसूताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुंडं क्रमोक्तरम्।
मारितं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम्।।
त्रिक्षारं पंचलवणं मोर्दतस्य समं समम्।
दत्वा निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम्।।
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः।
टंकणं विषतुल्यांशं दत्वा जम्बीरजैर्द्रवैः।।
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोयं कालकण्टकः।
दातव्यः सर्वरोगेषु सन्निपाते विशेषतः।।
द्विगुंजामार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणाम्।
निर्गुण्डीमूलचूर्ण तु माहिषाख्यं च गुग्गुलुम्।
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसंमिता।
अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम्।।
मंडलान्नाश्येत्सर्वान्वातरोगान्न संशयः।
सन्निपाते पिबेच्चानु रविमूलकषायकम्।। र० वि०, पृ०-४०

१- वज्रभृताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम्।
मारितं मर्द्दयेम्लवर्गेण दिवसत्रयम्।।
द्विक्षारं पंचलवणं मर्हितं स्यात्समं समम्।
ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्द्दयेद्दिवसत्रयम्।।
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषंचास्याष्टमांशतः।
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषंचास्याष्टमांशतः।
टंकणं विषतुल्यांशं दत्वा तं जम्बीरद्रवैः।।
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोयं वातकण्टकः।
दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः।।
द्विगुंजामार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणे।
निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षंच गुग्गुलुम्।।
समांशं मर्द्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता।
अनुयोज्य घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णंच भोजयेत्।
मण्डलं नाशयेत्सर्वं वातरोगे विशोष्तः।
सन्निपाते पिबेक्षानु तालमूलीकषायकम्।। तदेव- पृ० -४१

१४- शुद्ध पारद बीस तोला और गन्धक पाँच तोला दोनों की कंजली बनाकर ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म और हिंगुलभस्म पांच-पांच तोला, स्वर्णभस्म और चांदी भस्म प्रत्येक को तीन तोला लेकर हीरा भस्म एकमाशा और हरताल सत्व दस तोला-इन सभीको मिला कर जम्बीरी नींबू का रस, धतूरे का रस बासक(अडूसा) रस,थूहर का दूध, मदार का दूध कुचले का रस लेकर कनेर मूल के रस से भावना देकर एक गोला बना लेना चाहिए । कपड़े से उस गोले को लपेटकर शरावसम्पुट में बन्द कर बालुकायंत्र में मन्द मन्द अग्नि द्वारा तीनदिन तक स्वेदित करने के बाद स्वांगशीत होने पर औषध का चूर्ण करके मीठा तेलिया का चूर्ण पाँच तोला,पीपलचूर्ण दस तोला सब को मिलाकर दो रत्ती की मात्रा में सेवन करने से सुप्तिकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाता है ।[1]

१५- स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, हीराभस्म इन तीनों को समान मात्रा में लेकर मसूली, चूहा कन्नी, बिजौरा नीबू तथा केंवाच के क्वाथ में तीन-तीन दिन घोटकर तैयार कर इस रस को रोगों के अनुसार ही उपयोग करना चाहिए। इससे राजयक्ष्मा, प्रमेह,जीर्णज्वर अतिसार, संग्रहणी एवं बहमूत्र रोग नष्ट होता हैं। इस रस के सेवन से बुढ़ापे और मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। शरीर वज्र के समान मजबूत होकर सैकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करने में सक्षम हो जाता है । वीर्यक्षय नहीं हो पाता है और नपुंसक पुरुष भी जवान हो जाता है । इस रस के सेवन से सुन्दरता, मेघाशक्ति और बुद्धि तीव्र हो जाती है । चलने की शक्ति घोटे के समान नेत्र दृष्टि मयूर के समान,श्रवण शक्ति वराहके समान हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह रस स्त्रियों की कामपिपासा बुझाने में दूसरा कामदेवही है। इस रस को एक माशा की मात्रा में लेना चाहिए। इसके सेवन के समय गेहूँ की चीजें, उडद, केला, कटहर, छुहारा, बादाम, नारियल एवं

१- शुद्धसूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत्।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदं च पलं पलम्
सुवर्ण रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम्।
माषैकं मृतवज्रं तालसत्वं पलद्वयम।।
जम्बीरोन्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः।
मर्द्य हयारिजेद्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम्।।
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलमं वस्त्रवेष्टितम्।
वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना।।
आदायचूर्णयेच्छलक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम्।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः।।
द्विगुजो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तमण्डलकुष्ठनुत्।
वाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत्।।
लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्। र० वि०, पृ० ४२

एवं मधुर पदार्थों का एक वर्ष तक सेवन करना चाहिए ।[1]

१६- चाँदी भस्म का एकभाग, हीराभस्म के दो भाग, स्वर्ण भस्म के तीन भाग, ताम्र भस्म के चार भाग, पारदभस्म के पांच भाग, गंधक के ६ भाग लोह भस्म के सात भाग-इन सभी को परस्पर मिलाने के पूर्व गन्धक और पारदकी सर्वप्रथम कज्जली बना लेनी चाहिए। इस कज्जली में अन्य समस्त औषधियों को घृतकुमारी के रसमें घोट लेना चाहिए । घृतकुमारी के रस में घोटने के बाद काँच कूपी का ठीक प्रकार से मुख बन्दकर एक बड़ी हण्डी में रख कर उस हण्डी में नमक भर कर चूल्हे पर मन्दाग्नि में धीरे-धीरे पका लेना चाहिए। कांच कूपीके स्वांगशीतल हो जाने के बाद औषध द्रव्य को बाहर निकाल लेने के बाद इस मदार दुग्ध, असगन्ध, काकोली, केवांच मसूली तालमखाना शतावर पद्मकन्द, कसेरू और कास के क्वाथ में तीन-तीन बार भावना देनी चाहिए ।इसके पश्चात् इस भावना दिये हुए रसमें कस्तूरी सोंठ, मिरच, पीपल, कपूर, कंकोल, छोटी इलायची तथा लौंग का चूर्ण और इन सब के बराबर मिश्री मिलाकर इस द्रव्य को दस तोला गोदुग्ध के साथ पांच माशा की मात्रा में सेवन करते संमयं मधुराहार लेना चाहिए । इस से सुन्दरता, बल

१- एकांशं प्रक्षिपेत्स्वर्णं रौप्यं वज्रंच तत्समम् ।
मुसल्या चाखुकर्ण्या च भाव्यं लुंगरसैस्त्रयहम्।।
मोचात्मगुप्ता स्वररसैस्तदा मृत्युंजयो रसः।
सर्वरोगहरो ह्येष सेवितः पथ्यशालिभिः।।
राजयक्ष्मादिरोगांश्च प्रमेहान विंशतिं तथा।
जीर्णज्वरानतीसारान् ग्रहणीं बहुमूत्राताम्।।
तेन तेनानुपानेन नाशयेन्नात्र संशयः।
किमत्र बहुनोक्तेन जरामृत्युहरस्तथा।।
वज्रदेहो भवेत्सेवी द्रावयेद्वानिताशतम्।
न रएतसः क्षयस्तस्य षण्ढोऽपि तरुणायते।।
उर्ध्वलिगंसदातिष्ठेल्ललनायाः प्रियो भवेत्।
तप्तहाटकसंकाशः श्रीधीमेधाविभूषितः।।
हयवेगो मयूराक्षो वाराश्रुतिरेव सः।
अपरः कामदेवो वा मानिनीमानमर्दनः।।
गोधूमजान्विकारांश्च माषान्नं कदलीफलम्।
पन्सं चापि खर्ज्जूरं वातामं नालिकेरकम्।।
मधुरंच भजेत्प्राज्ञो वर्षमात्रमतन्द्रितः।
मात्रास्य माषप्रमिता सदा सेव्या नरोत्तमैः।। र० वि०, पृ० ४३

औरतेजस्विता बढ़ती है। इस रस से तरूणियों के साथ अत्यन्त रमण करने पर भी शरीर में कोई हानि नहीं होती है ।[1]

१७- हीरा भस्म का एक भाग, पारद भस्म के दो भाग, ताम्र भस्म के तीन भाग, स्वर्ण के चार भाग, लोहभस्म के पांच भाग, चाँदी भस्म के ६ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म के सात भाग-इन सभी को लेकर चीता बिजोरा नींबू, जम्बीरी नीबू, सहजने की जड़ और धृत कुमारी के रस में तीन दिन तक भावना देकर अद्रक के रस की सात दिन तक भावना देकर उसमें मीठे तेलियाका चूर्ण चतुर्थांश और सुहागाभस्म भी चतुर्थांश मिलाकर एक दिनके पश्चात् इस में त्रिकुटा, त्रिफला, जातुर्जात (दालचीनी तेजपाल, इलायची, नागकेशर) सेन्धा और सोंचर नमक, घर का धुआँ इन सभी को एक-एक भाग लेकर मिला लेना चाहिए । मिश्रण को मिला लेने के बाद इस में अद्रक,सहजना और बिजौरे नींबू के रस की भावना देकर तीन- तीन रत्ती की गोलियां बनाकर सेवन करने से अग्निमांद्य, हिचकी, श्वास, मण्डलकुष्ठ और यदि शरीर मोटा हो अथवा दुर्बल हो

१-तारं वज्रं सुवर्णंच ताम्रं सूतं सगन्धकम्।
लौहंच क्रमवृद्धानि कुज्ययदितानि मात्रया।।
विमर्द्दय कन्यकाद्रावैर्न्यसेत् काचमये घटे।
विमुद्रय पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवैभृति।।
वहिंन शनैः शनै कुर्याद्दिनैकं तत्समुद्धरेत्।
स्वांगशीतंच तच्चूर्णं भावयेदर्कदुग्धकैः।।
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा।
त्रित्रिवेलं रसैरेषा शतवय्र्याश्च भावयेत्।।
पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत्।
कस्तूरी व्योषकर्पूरं कंकोलैलालवंगकम्।।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतत् चूर्णं विमिश्रयेत्।
सर्वैः समां शर्करांच दत्वा शाणोन्मितं पिबेत्।।
गोदुग्धा द्विपलेनैव मधुराहारसेवकः।
अस्य प्रभावात्सौन्दर्य वलं तेलोऽभिवद्धति।।
तरूणी रमयेदबह्वीर्न च हानिः प्रजायते।। र० वि, पृ० ४४

तो इस रस के सेवन से शरीर ठीक ठीक समावस्था में आता है ।[१]

१८- एक अंधमूषा लेकर उसके भीतर नाग और वंश का लेप कर देना चाहिए। इस मूषा में स्वर्णभस्म, कृष्णाभ्रभस्म, चाँदी भस्म और ताम्रभस्म का एक-एक भाग लेकर उसे बन्द कर दें। इस मूषा को अग्नि पर रखकर धोंकनी पर एक दिन तक धोंक लेना चाहिए । इस प्रकार की विधि करने से मूषा के अन्दर समस्त द्रव्य को स्वांगशीत होने पर मूषा में बनी गोली निकाल लेनी चाहिए । एक दूसरी मूषाको नाग बंगका लेप करके उसमें पूर्वोक्त गोली हीरा भस्म को रखकर उसका मुख बन्द करके एक दन तक धोंकनी में धोकं लेने के बाद स्वांगशीत होने के भाद द्रव्यको निकालकर उसका बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण के बराबर पारद लेकर दोनों को मिला लें और दिव्य वनस्पतियोंके फलोंके रस की भावना देते हुए तप्त खरलमें तीन दिन तक घोटें और इसके पश्चात् एक मूषा में बन्द कर भूधर यंत्र में २४ घण्टे तक पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पुनः बराबर परिमाण का पारद डाल कर फिर से पूर्वोक्त विधि अपनानी चाहिए । यह विधि सात बार अपनानी चाहिए । सात बार यह विधि करने से पारद की भस्म बन जाएगी । अब इस भस्म में बराबर की गंधक मिलाकर अन्ध मूषा में बन्द करके अग्नि पर रख करके एक दिन धौकंनी पर धोकने से जो गोली बनेगी उसे एक वर्ष तक धारण करने से आयु की वृद्धि होती है। उस व्यक्तिके मल मूत्र में ऐसी शक्ति आजाती है। कि यदि लोहेके या ताम्रके टुकड़े पर मल का प्रलेप करके अग्निपर तपाया जाए तो वह स्वर्ण बन जाता है। यदि गोली न बनाकर भस्म को एक रत्ती की मात्रा के साथ सेवन किया जाए तो

१- वज्रसूतार्कस्वर्णायस्तारतीक्ष्णमयं क्रमात्।
भागवृद्धया मृतं सर्वं सहसा चित्रकद्रवैः।।
प्रमर्दयेन्मातुलुंगाम्लैर्जंबीरस्य दिनत्रयम्।
तथा शिग्रुजलैः क्वाथैः कन्याक्वाथैर्दिनत्रयम्।।
आर्द्रकस्य दिनैः सप्त दिवसे भावितं ततः।
शोषितं सूक्ष्मचूर्णन्तु पादांशं टंकणं तथा।।
टंकणं सवत्सनागं चूर्णं कृत्वा विमिश्रितम्।
त्रिकटुत्रिफलावहिन चातुर्जातकसैन्धवम्।।
सौवर्चलं धूम्रसारं चूर्णमेतत् समं समम्।
कृत्वा सम सुभागैकं तत्सर्वं चार्द्रकद्रवैः।।
शिग्रजैर्मातुलुंगोत्थैर्लोलयित्वा वटीकृतम।
रसः कालाग्निरुद्रोयं त्रिगुञ्जं खादयेत्सदा।।
अग्निदीप्तिकरं हिक्काश्वासं सर्वकृतान्तकः।
स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकम्।।
अनुपानविशेषैस्तु ततो रोगेषु योजयेत्।
साध्यासाध्यं जयत्याशु मण्डलान्नात्र संशयः।। र० वि०, पृ०- ४५

शरीर दिव्य होकर बलि पलित रहित, पराक्रमी एवं सौन्दर्य युक्त हो जाता है। आयु एक लाख वर्ष की हो जाती है।[1]

१६- स्वर्ण का मोटा पत्र एक भाग, हीरा का मोटा चूर्ण का एक भाग पारद चार भाग लेकर प्रथम एक अन्धमूषा में दो भाग पारद डाल देने चाहिए और उस पर हीरा चूर्ण और स्वर्ण पत्र डालकर पुनः बचा हुआ दो भाग पारद भी डाल देना चाहिए। अन्धमूषा को ठीक तरह से बन्द करके भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर समस्त द्रव्यको निकालकर दिव्य फलों के रसों की एक दिन तक तप्त खरलमें भावना देकर भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। इसके बाद औषध द्रव्य को देकर भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। इसके बाद औषध द्रव्य को दिव्य वनस्पतियों के फलों के रसकी भावना देकर मूषामें बन्द करके तुषाग्नि में तीन दिन तक पाक करके स्वांगशीतल होने पर द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। इस द्रव्य में पारदभस्म एक भाग, शुद्ध सीसे का बुरादा एक भाग हिंगुलोत्थ पारद एक भाग-इन तीनों को जम्बीरी नींबूके रस की भावना देकर अन्धमूषा में बन्द करके एक दिन तक अग्निमें रखकर

१- स्वर्ण कृष्णाभ्रसत्वं च तारं ताम्रं सुचूर्णितम्।
समांशं द्वन्द्वलिप्तायां मषायां चान्धितं धमेत्।।
तत्खोटभागाश्चत्वारा भागैकं मृतवज्रकम्।
माक्षिकं तीक्ष्णकान्तं च भागैकं मृतवज्रकम्।।
समस्तं द्वन्द्वलिप्तायां मूषायां चान्धितं धमेत्।
तत्खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु चूर्णांशं द्रुतसूतकम्।।
त्रिदिनं तप्तखल्वे तु मर्द्यं दिव्यौषधिद्रवैः। ——
रुद्ध्वाथ भूधरे पच्यादहोरात्रात्समुद्धरेत्।।
द्रुतसूतं पुनस्तुल्यं दत्वा मर्द्यं पुटेत्तथा।
इत्येवं सप्तवारांस्तु द्रुतं सूतं समं समम्।।
दत्वा मर्द्यं पुटे पच्यज्जायते भस्मसूतकः।
भस्मसूतसमं गन्धं दत्वा रुदध्वा धमेद् दृढम्।।
जायेत गुटिका दिव्या बिख्याता दिव्यखेचरी।
वर्षैकं धारयेद्वक्त्रे जीवेत्कल्पसहस्रकम्।।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां सर्वलोहस्य लेपनात्।
जायते कनकं दिव्यं समावर्ते न संशयः ।।
पलद्वयं भृंगराजद्रवं चानुपिबेत्सदा।
पूर्वेक्तं भस्मसूतं वा गुंजामात्रं सदा लिहेत्।।
वर्षैकं मषनाऽऽज्येन लक्षायुर्जायते नरः।
वलीपलितनिर्मुक्तो महाबलपराक्रमः।। र० वि०, पृ०-४६

धौंकना चाहिए। स्वांगशीतलहोने पर पारदादि की गोली निकाल कर एक खुली मूषा में रखकर अग्नि पर रख कर धौंकते रहना चाहिए। यह द्रव्य तब तक धौंकते रहना चाहिए,जब तक कि गोली में मिश्रित सीसा भस्मी भूत होकर अपने अस्तित्व को नष्ट न कर दे। उस अवशिष्ट द्रव्यमें दसवा भाग विडनमक मिलाकर कच्छप यंत्र रखकर स्वर्णादि धातुओं का एक-एक करके जारणकरें प्रत्येक धातु छ-६ गुणी जारण हो जानी चाहिए और सब के अन्त में हीरा द्विगुण जारण करें। इन सब विधियों के समाप्त होनेके पश्चात् दिव्य वन-स्पपियों के फलों के रसों में समस्त औषध द्रव्य को खूब अच्छी प्रकार से घोटकर एक मूषा में बन्द करके अग्निपर रखकर धौंकनी से धोकं लेना चाहिए। मूषाके अन्दर ही अन्दर गोली बन जाएगी। इस गोली का शालिग्रामके समानअंकुशी मंत्र से पूजन करके मुख में धारण करने से शरीर दिव्य प्रभायुक्त हो जाता है। प्रतिदिन मुखमें धारण करने से आयु बहुत बढ़ जाती है। यहां तक कि मनुष्य आकाश मार्ग में उड़ने लगता है। उसके मल मूत्र में इतनी शक्ति आ जाती है कि स्पर्श मात्र से तांबे का स्वर्ण बन जाता है। ढाक के फूल,तिल (काली) और मिश्री ५तोला दूधके साथ मिलाकर पान करते रहना चाहिए ।[1]

१- हेम्ना यद्द्वन्द्वितं च वज्रं कुर्यात्तत्सूक्ष्मचूर्णितम्।
एतद्देयं गुह्यसूते मूषायामधरोत्तरम्।।
पादमात्रं प्रयत्नेन रुद्ध्वा सन्धिं विशोषयेत्।
भूधराख्ये दिनं पच्यात्समुद्धृत्याथ मर्दयेत्।।
दिव्यौषधफलं द्रावैस्तप्तखल्ले दिनावधि।
उद्धृत्य भूधरे पच्याद्दिनं लघुपुटैः पुटेत्।।
समुद्धृत्य पुनस्तद्वन्मर्धं रुद्ध्वा दिनत्रयम्।
तुषाग्निा शनैः स्वेद्यमूर्ध्वाधः परिवर्त्तयन्।।
जायते भस्मसूतोऽयं सर्वयोगेषु योजयेत्।
द्रुतसूतस्य भागैकं भागैकं पूर्वभस्मकम्।।
शुद्धनागस्य भागैकं सर्वसमम्लेन मर्दयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मेयं खोटो भवति तद्रसः।।
धमेत्प्रकटमूषायां यावन्नागक्षयो भवेत्।
द्रुतसूतप्रकारेण द्रावयित्वा त्विमं रसम्।।
निक्षिपेत्कच्छपे यन्त्रे विडं दत्वा दशांशतः।
स्वर्णादिसर्वलोहानि क्रमेणैव च जारयेत्।।
त्रिगुणं तु भवेद्यावत्ततो रत्नानि वैक्रमात्।
जारयेद्द्रावितान्येव प्रत्येकं त्रिगुणं शनैः।
ततो यन्त्रात्समुद्धृत्य दिव्यौषधद्रवैर्दिनम्।।
मर्धं रुद्ध्वा धमेद्गाढं जायते गुटिका शुभा।
पूजयेदंकुशीमन्त्रैर्नाम्नेयं दिव्यखेचरी।।
यस्य वक्त्रे स्थिता ह्येषा स भवेदैश्वरवोपम्।
दिव्यतेजा महाकायः खेचरत्वेन गच्छति।।
यत्रेच्छा तत्र तत्रेव क्रीडते ह्यंगनादिभिः।
महाकल्पान्तपर्यन्तं तिष्ठत्येव न सशयः।।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां ताम्रं भवति कांचनम्।
पलाशपुष्पचूर्णन्तु तिलाः कृष्णाः सशर्कराः।।
सर्वं पलत्रयं खादेन्नित्यं स्यात् कामणे हितम्।। र० वि०, पृ०-४७-४८

२०- पारद गंधक दो-दो तोला लेकर कज्जली बना लेनी चाहिए। चाँदी हीरा, स्वर्ण, ताम्र और लौहभस्म दो-दो तोला लेकर कज्जली में मिलाकर घृतकुमारी के रस के साथ भावना दें । प्रगाढ़ होने पर और सूखजाने पर आतशी शीशी में भर कर शीशी का मुख मिट्टी (नमक मिश्रित) से बन्द करके बालुकायंत्र द्वारा गर्म कर लेना चाहिए । स्वांगशीतल हाने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीसकर मदार के दूध, कासमूल के स्वरस, कमलकन्द के रस, मूसली क्वाथ, गोखरू के क्वाथ, काकीलीस्वरस,असगन्ध स्वरस या क्वाथ, शतावर और जवासे के क्वाथ की अलग- अलग तीन-तीन भावनाएं देनी चाहिए। इस भावित द्रव्य में सोंठ, कालीमिरच, पीपल, कपूर केशर, इलायची, लौंग और कस्तूरी सभी का समान भाग लेकर चूर्ण करके परस्पर मिलाकर और खरल कर खूब बारीक चूर्ण मिला लेना चाहिए । इस समस्त औषध द्रव्यके बराबर शुद्ध देसी शर्करा मिला कर गोदुग्ध के साथ एक निष्क की मात्रा में सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन काल में मधुर और अम्लपदार्थों का परित्याग करना चाहिए। इस रस के सेवन से बल, कान्ति एवं विशेषकर स्त्रियों के सेवन करने से उनकी सुन्दरता की अभिवृद्धि होती है । पुरूषों के सेवन करने से स्त्रीसम्भोग करने पर भी वीर्यक्षय नहीं होता है। यह रस श्रेष्ठ वीर्य वर्धक योग है ।[१]

२१- पारद एक भाग, गन्धक तीन भाग इन दोनों की कज्जली बनाकर रख लेना चाहिए। सीसा, बंग, ताम्र, चाँदी, स्वर्ण अभ्रक, लोह, रौप्यमाक्षिक और हीरा-इन सभी का अलग- अलग एक-एक भाग भस्म लेकर पारद गन्धककी कज्जली में मिलाकर गोरखमुण्डी,अतीस, मकोय, असगन्ध, सम्हालु और भृगंराज प्रत्येक के स्वरस से तीन-तीन दिन तक भावनाएं देनी चाहिए । प्रगाढ़ होने पर गोला बनाकर और सुखाकर उस पर पत्ते लपेटकर पांच परत का मिट्टी का

१- तारं वज्रं स्वर्णताम्रं च सूतं लोहं गन्धं भागयुग्मं प्रकुर्यात्। —
कन्याद्रावैर्मर्दयेदेकयामं चूर्णं कृत्वा काचकूप्यां निवेश्य।।
कूपीं चापि पूरयेत्सिन्धुचूर्णैर्मुद्रां दत्वा शोषयेत्तत्प्रयत्नात्।
वह्निं कुर्याद्वासरैकं प्रयत्नात् शीतं जातं चाल्वमध्ये विचूर्ण्य।। रवल्व
अर्कक्षीरेणाथ भाव्यं हि सर्वं कासस्यैवं पद्मकन्दस्य नीरैः।
मौशल्या वै गोक्षुरस्य द्रवेण त्रिस्त्रिर्वेलां भावनां च प्रदद्यात्।।
काकोल्या वै वाजिगन्धाशहताह्वा दुःस्पर्शानां वै रवै स्तैर्भावयेच्च।
चूर्णं कृत्वा मिश्रयेदव्योषचूर्णं कर्दूरं वै कुंकमैलालवंगम्।।
कस्तूरीं वै पूर्वचूर्णात्षडंशां कार्या सर्वैः शर्करा वै समा वा।
भक्षेच्चैवं निष्कमात्रं प्रयत्नाद्गोक्षीरं वै चानोपाने विधेयम्।। नानुपाने
मिष्टाहारं सेवयेच्चैव नाम्लमोजस्तेजो वर्धते वै बलं च ।
सौन्दर्यं वै जायते सुन्दरीणां वृद्धिः कामे नैव हानिश्च वीर्ये।।
तस्मात सेव्यः कामदेवो रसोऽयं वृष्येपूक्तस्त्वेष योगो वरिष्ठः।। र०वि०, पु० -४६

लेप करके सुखालें और एक मिट्टी की हाड़ी में आधा रेती भर कर उस पर गोल रख दें और फिरसे रेती हांडी के मुंह तक भर दें। इस हांडी का मुख एक सकोरे से ढक कर कपड़ मिट्टी कर, हांड़ी को मन्दग्नि पर रखकर ६ पहर की आंच देकर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर बारीक चूर्ण कर, इस चूर्ण को पीपल और अद्रक की पांच-पांच भावनाएं देकर कलिहारी स्वरस की ७ भावनाएं और चीतामूल क्वाथ और सम्भालु स्वरस की १२-१२ भावनाएं देकर दो-दो रत्ती को गोलियां बना लेनी चाहिए। दो रत्ती की एक गोली को पीपल और सोंठके चूर्ण में मिलाकर अद्रक के रस के साथ लेने से कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्रग्रहणी, अर्श, शोथ, अश्मरी, उपदशादि शिश्नरोग, अग्निमाद्य, वातव्याधि, शुल,अपस्मार, सन्निपात और कफ का नाश होता है।[1]

२२- हीराभस्म के दो भाग, अभ्रक भस्म के तीन भाग, पारद भस्म के चार भाग, शुद्ध गन्धक के ६ भाग, लोह भस्म के दो भाग, चाँदी भस्म के चार भाग-इन सभी को मिश्रित कर खरल में हुरहुर के स्वरस की एवं गोलाचन के पानी की ५-५ भावनाएं देकर समस्त द्रव्य को एक मजबूत कूषा में बन्द कर इस मूषा को शरावसम्पुट में बन्द करके एक हाथ लम्बे चौड़े और गहरे गर्तमें नीचे कुछ कण्डे रखकर शरावसम्पुट को रखकर उस गर्त को इतने कण्डों से भरदें जिनकी अग्नि दो पहर में शान्त हो जाए। शरावसम्पुट स्वांगशीत हो जाने पर औषध द्रव्यको निकाल कर भैरव देव का पूजन करके एक रत्ती औषध को मरिच चूर्ण के साथ लेना चाहिए। क्रोध, घमण्ड, व्यायाम,आतसेवन,अधिक बोलना चिन्ता चुगली और झूठ बोलना आदि को छोड़कर पथ्यकर आहार-बिहारका सेवन करना चाहिए। यह रस पुष्टिकारक, दृष्टि दायक, आरोग्य, सुख, सन्तान, आयुवर्धक और वायुनाशक है। शरीर की कान्ति को बढ़ाता है। यह रस बुढापा केश

१- सूतं चैकं गन्धकं च त्रिभागं नागं वंगशुल्वतारं च हेम।
अभ्रं लोहं तारमाक्षीकवज्रमेंकैकं वैशोधयित्वा प्रदेयम्।।
मुण्डीश्वेताकाकमाच्यश्वगन्धानिर्गुण्डयो वै भृगराजेन युक्ताः।
रसैरेषां वासरान् त्रीन् प्रमर्द्यात्खल्वे सम्यग्गोलकं कारयेद्धि।।
ततो धर्मो शोषयेत्तं च गोलं लेपाः सम्यक् पंच मृदिभः प्रदेया।
भाण्डे पूरयेद्वालुकाभिर्मध्ये गोलं निक्षिपेन्मुद्रयेच्च।।
अग्नि कुर्याद्यामषष्टयष्टमात्रं शीते सिद्धोजायते वे रसोऽयम्।
कृष्णाक्वाथैर्भावना: पंच देया आद्रैणैवं भावयेत्पंचवारान्।।
जवालामुख्याः स्वै रसैः सप्तवारं भाव्यं चाथो सूर्यवारं हि वह्नेः।
निर्गुण्डया वै भावना भानुमात्राः पश्चात्कार्या वल्लमात्रा वटी हि।।
देया सदिभः पंचमाशा हि कृष्णा तदवछुटी चूर्णिता तत्प्रमाणा।
कासे श्वासे मूत्रकृच्छ्रे ग्रहण्यामर्शः शोफे चाश्मरीमेढ्ररोगे।।
मन्दे ह्यग्नौ वातरोगेऽथ शूलेऽपस्मारे वै सन्निपाते वलासे।
सेव्यो वललं चार्द्रकेणापि सम्यक् क्षारंचाम्लं वर्जयेच्चापि पथ्ये।। र०वि०, पृ०- ५०

पतन और खालित्य को नष्ट करता है। शरीर को आरोग्य रखते हुए मजबूत बनाता है। स्थावर जंगम, एवं कृत्रिम किसी भी प्रकारका विष इस रस के सेवन से शरीर पर असर नहीं कर पाता है । क्षयरोग, कास, प्रमेह, रक्तपित, विद्रधि, अष्ठीला, गुल्म संग्रहणी तथा महाघोर अतिसार को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करनेसे बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य देवता के समान कन्ति मान हो जाता है ।[1]

१- द्वौ भागौ मृतहीरस्य ह्यभ्रकस्य त्रयः पुनः ।
भस्म सूतस्य चत्वारः षट्शुद्धगन्धकस्यच।।
मृतलोहस्य द्वौ भागौ चत्वारस्तारकस्य च।
रोच नाया भवन्त्यत्र भावनाः पंच सूतके।।
तथा सुवर्चलायाश्च दातव्या भावनाः क्रमात्।
अथो दृढायां कूपायां मध्ये दत्वा च तं रसम्।।
पुनः शरावद्वितये दत्वा पश्चाद्विमुद्रयेत्।
हस्त प्रमाण के कुण्डे देयः शनैर्लघुः।।
द्वियामं यावदेवैतच्छीतमादाय तं रसम्।
विधाय भैरवस्याऽथ पूजनं भिषजस्ततः।।
गुंजामेकममुं दद्याद्धीरावेध्यं रसेश्वरम्।
मारिचेन समं प्रातस्ततस्ताम्बूलभक्षणम्।।
कोधमात्सर्यमुत्सार्य व्यायामं धर्मसेवनम्।
अतिप्रलपनं चिन्तामभ्यसूयां च वर्जयेत्।।
असत्यभाषणं चैव पथ्य सेव्यं निरन्तरम्।
अनेन जायते पुष्टिर्दृष्टयारोग्यंच जायते।।
अनेन सुखमाप्नोति पुत्रं चानेन चोत्तमम्।
अनेन नश्यते वायुरनेनायुश्च वर्धते।।
अनेन लभते कान्तिमनेनापि जरांजयेत्।
अनेन पलितं याति खालित्यंच विशेषतः।।
अनेन वज्रकायाः स्याद्विशेषेण निरामयः।
स्थावरं जंगमंचापि कृत्रिमंचापि यद्विषम्।।
अनेन न प्रभवति सेवमानस्य न क्वचित्।
अनेन देवरूपः स्याज्जायते बुद्धिरुत्तमम्।।
क्षयं कासं प्रमेहंच रक्तपित्तं सुदारुणम्।
विद्रध्यष्ठीलिके गुल्मं ग्रहणीमपि दुस्तराम्।।
अतिसारं महाघोर सर्वान् व्याधीश्च नाशयेत्। र० वि०, पृ०- ५२

२३- हीरा, पारद और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर नींबूके रसकी भावना देकर गोला बना लेना चाहिए और गोले को शराव सम्पुट में बन्द कर के कुक्कुटपुट द्वारा साफ करके तीन रत्ती की मात्रा में इस रसको मधुके साथ यदि एक वर्ष तक सेवन किया जाए तो मनुष्य की अकाल मृत्यु नहीं होती है तथा समस्त रोग नष्ट होते हैं।[1]

२४- शुद्ध पारद, हीरा भस्म, स्वर्ण, चाँदी, मोती, ताम्र और अभ्रक भस्म का एक-एक भाग, गन्धक समस्त द्रव्य के बराबर लेकर मिलाने के बाद पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बना कर उसे पीस लेना चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में इस पर्पटी के सेवन से कष्टसाध्य और बहुत पुरानी संग्रहणी, अत्यन्त कष्टकर और पुराना आमशूल एवं अतिसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के अर्श, सोपद्रव राजयक्ष्मा शोथ, कामला, पाण्डु प्लीहा, गुल्म, जलोदर पक्तिशूल, अम्लपित्त वातरक्त, वमन, भ्रम १८ प्रकार के कुष्ट, प्रमेह, विषमज्वर अजीर्ण (चार पकार का) अग्निमांद्य और अरूचि रोग नष्ट होते हैं। वृद्ध व्यक्ति भी इस रस के सेवन से बलिपलित से रहित और निर्मल, स्वच्छ-बुद्धि वाला होकर सौ वर्ष तक जीता है। प्रातः काल सेवन करने से अत्यन्त कामोत्तेजना होती है।[2]

२५- पारद गंधक का एक-एक भाग लेकर कज्जली बनाकर इस कज्जली में लोह,ताम्र, अभ्रक और मोतीभस्म का एक-एक भाग,हीरा भस्म के १/४भाग मैनसिल,हरताल,अंजन और तुत्थ भस्म

१- वज्रभस्म रसभस्म मौक्तिकं मर्दितं च खलु निम्बुवारिणा।
तच्च कुक्कुटपुटेन पाचितं चूर्णयेन्मधुयुतं हि वल्लकम्।। र० वि०, पृ० -५५

२- रसं वज्रहेमतारं मोक्तिकं ताम्रमभ्रकम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम्।।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम्।
आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम्।।
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम्।।
शोथंच कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम्।।
पक्तिशूलाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम्।
अष्टादशविधान् कुष्ठान् प्रमेहान् विषमज्वरान्।।
चतुर्विधमजीर्णंच मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः।।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः।
प्रातः करोति नियतं सततं द्विगुंजाम्।।
यस्ताम स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं
हानिं वलीपलितयोरतुलं बलंच।। र० वि०, पृ० -५५

अंजन और तुत्थ भस्म का एक-एक भाग, रसोत समुद्रफेन और पांची नमक का एक- एक भाग मिला लेना चाहिए। अब भृगराज रस, चीताक्वाथ और थूहर के दूध की एक-एक दिन तक भावना देकर गोला बनाकर इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक कर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर उसे अच्छी प्रकार से पीस लेना चाहिए। इस रस को दो रत्ती की मात्रामें अद्रक रसके साथ सेवन करने से और अनुपानसे पीपलचूर्ण और दशमूल क्वाथ के सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट हो जाता है। प्रतिदिन सरसों के तेल की मालिश और भैंस का घी तथा दूध एवं गुरू पदार्थो का सेवन करना चाहिए। दो-दो दिनका अन्तर देकर कड़वी तुम्बीके क्वाथ से वाष्पस्नान भी करना उत्तम है।[1]

२६- प्रथम पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इस कज्जली में लोह अभ्रक, नाग, बंग, स्वर्ण, हीरा और मोतीभस्म समानमात्रा में लेकर अच्छीं प्रकार से मिला लें शतावरके रस की भावना देकर गोला बनानेके बाद इसे शराव सम्पुटमें बन्द कर और एक गर्त में रखकर उपलों की आंच दे। स्वांगशीतल होने पर द्रव्यको निकाल ले। इस को ६ रत्ती की मात्रा में शीतल जल के साथ एक मास तक सेवन करने से १८ प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। तथा पुष्टि, तेज, बल, वर्ण, शुक्र और अग्नि की वृद्धि होती है।[2]

१- सूतायस्ताम्रमभ्रंच मुक्ता चापि समं समम्।
सूतपादोत्तमं वज्रं शिलागन्धकनालकम्।।
तुत्थं रसांजनं शुद्धमब्धिफेनं शिलांजनम्।
पंचानां लवणानांच प्रतिभागं रसोन्मितम्।।
भृंगराजचित्रवज्रीदुग्धेनापि विमद्र्दयेत्।
दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुद्ध्वजा गजपुटे पचेत्।।
भूतांकुशो रसो नाम नित्यं गुंजाद्वयं लिहेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणम्।।
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम्।
स्वेदयेत्कटुतुम्ब्या च तीक्ष्ण रूक्षंच वर्जयेत्।।
माहिषंच घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भक्षयेत्।
अभ्यंग कटतैलेन हितो भूतांकुशे रसे ।। र० वि०, पृ०-५६

२- रसगन्धायसाभ्राणि नागवंगौ सुवर्णकम्।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत्।।
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे।
बुद्ध्वा शुष्कं समुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत्।।
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद् गर्ते च गोमयाग्निना।
पुटेद्यामचतुः संखयमुद्धृत्य स्वांगशीतलम्।।
श्लक्ष्णं खल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्द येद दृढम्।
देवब्राह्मणपूजांच कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके।।
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम्।
अष्टादशप्रमेहाश्च जयन्मासोपयोगतः।।
पुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिमनुत्तमाम्। तदेव- पृ० -५७

२७- पारद, हीरा, सीसा, मोती, चाँदी, स्वर्ण और अभ्रक भस्म का एक-एक तोला लेकर कपास और खेर के क्वाथ की भावनाएं देकर इस में प्रवाल, भस्म और शुद्ध गंधे दो-दो तोला मिलाकर अच्छी तरह खरल करके हिरन के सींग में भरकर मुख को बन्द करके लघुपुट में पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर धाय के फूल, काकोली, महुआ जटामांसी, बला अतिबला, महाबला मीठातेलिया हिंगोट,दाख, पीपल, बन्द शतावर, शालपणी, पृष्णिपर्णी, मुद्गपर्णी माषपर्णी फाल्सा, कसेरू, मुलेठी और केवांच के बीज का क्वाथ या रस की अल्ग- अलग भावना देकर इसमें इलायची, दालचीनी,तेजपात, जटामांसी, लौंग, अगर, केशर नागरमोथा, कस्तूरी पीपल, सुगन्धबाला, और कपूर प्रत्येक का चूर्ण चार-चार माशे मिला लें। इस रस को चार माशा की मात्रा में मिश्री आंवला और विदारी कन्द एक तोला तथा घृतके एक तोलेके साथ सेवन करने से सम्भोग शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है।[1]

२८- स्वर्ण, मोती, अभ्रक, सीसा, बंग,पीतल, स्वर्णमााक्षिक,चाँची, हीरा, लोह, हरताल और स्वर्ण भस्म समान मात्रा में लेकर मिला और केला, मकोय, अडूसा,नीलकम्ल और जयन्ती रस की एक-एक भावना देकर उस के पश्चात् कपूर जल से एक दिन तक खरल करके एक- एक रत्ती की गोलियां बनाकर इस रसको प्रातः काल सेवन करने से स्त्री रोग नष्ट होते हैं। बलवीर्य की वृद्धि होती है। २

१- सूतं वज्रमहिमुक्ता तारं हेमसिताभ्रकम्।
रसैः कार्पासकानेतान मर्दयेदोरमेदजैः।।
प्रवालं चूर्णगन्धस्य द्वि द्विकर्षो विमिश्रयेत्।
प्रवालं चूर्णगन्धस्य मिमवमर्द्य मृगशृंगके।। विमर्द्य
क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः।
काकोलीमधूकं मांसी बलात्रयविषेंगुदम्।।
द्राक्षा पिप्पलि वंदाकं वरी पर्णीचतुष्टयम्।
परूषकं कसेरूश्च मधुकं वानरी तथा।।
भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत्।
एतात्वक् पत्रकं मांसी लवंगागरु केशरम्।।
मुस्तं मृगमदं कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत्।
एतच्चूर्णैः शाणमितैः रसं कन्दर्पसुन्दरम्।।
खादेच्छाणमितं रात्रौ सिताधात्रीविदारिका।
एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिष्कर्षेण सम्मितम्।। र० वि०, पृ० -५८

होते हैं। बलवीर्य की वृद्धि होती है ।[1]

२६- प्रथम पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना कर इस कज्जली में स्वर्ण, हीरा प्रवाल और मोती भस्म समान मात्रामें डालकर त्रिफला क्वाथकी भावना देकर आधी- आधी रत्ती की गोलियां बनाकर इस रस को दोषानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से रूद्धांत्र, आंत्रवृद्धि, वातज, पित्तज मथा कफज जैसे अन्यान्य रोग नष्ट हो जाते है ।[2]

३०- पारद, हीरा, स्वर्ण, चाँदी, सीसा लोह, ताम्र, मोती, स्वर्णमाक्षिक प्रवाल, शंख और तुत्थभस्म समान मात्रा में लेकर चीता क्वाथ की सात दिन तक भावना देकर पीतवर्ण की बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भरकर सुहागा से मुख बन्द कर शराव सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर समस्त औषध द्रव्यको निकाल कर पीस लें और सम्हालु और अद्रकरस की सात-सात भावनाएं देकर चीता क्वाथकी २१ भावनाएं देकर एक रत्ती की मात्रा में पीपल, कालीमिरच मधु और घृतके साथ सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य सभी प्रकार का क्षय रोग निश्चय ही नष्ट होता हैं । आठ प्रकार के महारोग, कासश्वास, ज्वर और अतिसार जैसे रोग

१- स्वर्णं मौक्तिकम भ्रंच नागं वडंगच पित्तलम्।
माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालंच खर्परम्।।
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च।
स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च।।
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रगतः परम्।
सम्मर्द्यातन्द्रितः कुर्याद् भिषग्गुंजामिता वटीः।।
एकैकांच प्रयुंजीत प्रातराशं बलाम्बुना।
उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ।।
इयं रत्न प्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा।
सर्वस्त्रीरोगहन्त्री व बल्या वृष्या रसायनी र० वि०, पृ० -५८

२- रसं गन्धं तथा हेम व्रजविद्रुममौकितकम्।
गृहीत्वा समभागेन मर्दयेत त्रिफलाम्बुना।।
गुंजार्द्धप्रमिताः कुर्याद् वटीश्छायप्रशोषिताः।
एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः।
रुद्धान्त्रत्वमन्त्रवृद्धिं तथान्यानन्त्रजान् गदान।
वातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महो दधिः।। र० वि०, पृ० -५६

ज्वर और अतिसार जैसे रोग नष्ट होते हैं। यह रस योगवाही है अतएव अनुपान भेद से समस्त रोगों में लाभप्रद है।[1]

३१- पारद, गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इस कज्जली में हीरा चाँदी, ताम्र, तीक्ष्ण लोह, अभ्रक, मोती, शंख, प्रवाल, हरताल और मैनसिल भस्म समान मात्रा में चीता जड़ के क्वाथ की सात दिनतक भावना देकर मदार दूध, सम्हालु के सूरण रस और सेंहुडके दूध की अलग-अलग तीन दिन तक भावना देकर औषध द्रव्य को पीत वर्ण की कौड़ियो में भरकर उसका मुख सुहागा(मदार दुग्ध भावित)से बन्दकर इन कौड़ियों को शरावसम्पुट में बन्द कर गजपुट की आंच देकर स्वांगशीतल होने पर औषेध द्रव्य निकाल कर उसे पीसकर इसी निसे हुए द्रव्य में पारद भस्म और वैक्रान्त भस्म १/४ भाग डालकर सहजना मूल और चीतामूल क्वाथ एवं अद्रक रस की क्रमशः ७,२१ और ७भावना देकर इसमें सुहागा, मीठा तेलिया, काली मिर्च, लौंग, इलायची, सोंठ हरीत की, पीपल और जायफल का चूर्ण प्रत्येक १/४-१/४ भाग मिलाकर नीबू और अद्रकके रस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर इस रस को पीपल चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हुए अग्नि दीपन बल, तेज पाण्डु, शूल संग्रहणी, रक्तातिसार प्रमेहश प्लीहा, जलोदर अश्मरी तुषा, हलीमक, शोथ, उदररोग, भगन्दर,ज्वर, अर्श और कुष्टरोग नष्ट होते हैं। बहुत दिनों तक सेवन करते रहनेसे पलित और मृत्यु शीघ्र न होकर बहुत ही दृढ़ और मजबूत हो जाता है।[2]

१- रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहंच ताम्रकम्।
तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकोविद्रुमम्।।
शंखंच तुत्थां तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका।।
टंगणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुख मन्धयेत्।
मृदभाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत्।।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्डयः सप्तभावनाः।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः।।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजैकसम्मितम्।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशय।।
योजयेत्पिप्पली क्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा।
महा रोगाष्टके कासे जवरे श्वासेऽतिसारके।।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहे नियोजयेत्।। र० वि०, पृ० -६२

२- द्रष्टव्य तदेव- पृ०- ६१- ६२

३२- प्रथम पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयारकर इस कज्जली में सहस्र- पुटी अभ्रक,हीरा, प्रवाल, मोती, स्वर्ण,चाँदी स्वर्णमाक्षिक और कान्त लोहभस्म समान मात्रा में मिलाकर चीतामूल क्वाथ की भावना देकर तीन-तीन रत्ती की गोलियां बनाकर, बल दोषानुसार अनुपान व्यवस्था करके इस रस के सेवन से क्लोमरोग नष्ट होते हैं । क्लोमरोग के रोगी को उग्र आहार-विहारको छोड़ देना चाहिए । संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है जिसे यह रस नष्ट न कर सकता हो ।[1]

३३- हीरा,पन्ना, पुखराज,नीलम, पारदभस्म, हिंगल और गंधक समान २ भाग लेकर प्रथम पारद,गंधक की कजली बनाकर, इस कज्जली में उपयुक्त भस्म मिलाकर समस्त द्रव्य को लोहपात्र में रखकर चूल्हे पर गरम कर पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बना लें । पर्पटी के शीतल हो जाने पर सम्हालु, तुलसी, सहजन,धतूरा आक,चीता,सोंठ मिरच, पीपल, त्रिफला, केला तथा अद्रक के रस एवं क्वाथ की पृथक्- पृथक् सात-सात भावनाएं देकर इस रस को एक रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से अथवा दोषानुसार ठीक-ठीक अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त नासारोग नष्ट होते है ।[2]

१- अभ्रं सहस्रशो दग्धं रसं दरदसम्भवम्।
फेटराजाम्भसा शुद्धं गन्धकं हीरकन्तथा।।
विद्रुमं मौक्तिं हेम रौप्यं माक्षिकमेव च। मौक्तिकं
कान्तलोहंच सम्मर्द्य विधिना वह्निवारिणा।।
वल्लमात्रां वटीं कृत्वा धायायां परिशोषयेत्।
एकैकां योजयेतप्राज्ञो यथादोषानुपानतः।।
क्लोमरोगविनाशर्यं वह्नेः सन्धुक्षणाय च।
न सोऽस्ति रोगो लोकेअस्मिन्यमियं न विनाशयेत्।।
यो यः समाश्रयेद्वायधिः क्लोमितं तमवेक्ष्य च।
क्रियां संसाधयेद्वैद्यो यथादोषं यथाबलम्।।
अनुग्रण्यन्नपानानि क्लोमामयनिपीडितः।
सेवतोग्राणि सर्वाणि यत्नतः परिवर्जयेत्।। र० वि०, पृ० -६३

२- वज्रं मरकतं पुष्पमिन्द्रनीलं सुचूर्णितम्।
रसहिंगुलगन्धंच कज्जलीं कारयेद्भिषक्।।
द्रावयेत्तां लोहपात्रे पर्पटयाकारतां नयेत्।
निर्गुण्डी-तुलसी-शिग्रुधत्तूररविवह्निजैः।।
रसैर्व्योषवरारम्भासुरसैरपि भावयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा परिभावयेत।।
एवं सिद्धो रसो नाम्ना विख्याता मणिपर्पटी।।
सेविता गुंजयातुल्या निहन्यान्नासिकागदान्।
पथ्योपचारादिवशात् सर्वव्याधीन् विशेषतः।। तदेव- - -

३४- स्वर्ण और चाँदी भस्म के दो-दो भाग बंग, नाग और कान्तलोहभस्म के तीन-तीन भाग, रस सिन्दूर, हीरा प्रवाल और मोती भस्म के चार-चार भाग-इन सभी को मिलाकर गोदुग्ध की भावना देकर ईख,अडूसा,केले की जड़,कमल और चमेली के फूलों की अलग- अलग सात-सात भावनाएं देकर सफेद चन्दन, सुगन्धवाला खस और हलदी के क्वाथ की अलग-अलग,सात-सात भावना देकर कस्तूरी जलकी भावना देकर ६-६ रत्ती की गोलियां बनाकर इस रसको मधु, मिश्री और घृत के साथ सेवन करने से बलि पलित, प्रमेह क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्तदोष विषविकार रोग नष्ट होते हैं इसके अतिरिक्त श्वेतपाण्डु मूत्राधात और अश्मरी रोग नष्ट होते हैं। इस रस को मिश्री और चंदन के साथ सेवन करने से अम्लपितादि रोग नष्ट होते हैं। यह रस मेधा बल वीर्य, कामशक्ति कान्ति और उत्तम सात्विक,आहार विहार का पालन करने से सौ-सौ स्त्रियों के साथ समागम करने की शक्ति को बढ़ाता है ।[१]

३५- स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, नाग ,बंग, लोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, अभ्रक कांस्य पित्तल, स्वर्ण माक्षिक, रौप्यमाक्षिक, तुत्थ, खर्पर, गन्धक, गेरू,कसीस, हरताल, मैनसिल, अंजन और फिटकिरी भस्म के कुष्ट और शिलाजीत एक-एक तोला, वैक्रान्त,सूर्यकान्तमणि,चन्द्रकान्तमणि,महानील मणि, हीरा, मोती, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, प्रवाल, स्फटिक, वैदूर्य और राजावर्त भस्म तीन-तीन रत्ती, उपर्युक्त समस्त द्रव्य से चार गुणा अधिक शुद्ध पारद और पारद से चार गुण अधिक गंधक लेकर इनकी कज्जली बनाकर, इस कज्जली में समस्त औषध द्रव्य मिलाकर खरल कर एक लोह के पात्र में रखकर अग्नि पर चढाएं और एक काष्ट दण्ड से औष्ध को चलाते जाएं । जब

१- पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो बंगहिकान्तजम्।
चत्वारः सूतं वज्रंच प्रवालं मौक्तिकं तथा।।
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीद्विजलैर्निशा।
मोचकन्दरसैः सप्त क्रमादभाव्यं पृथक्पृथक्।।
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा ।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराड्भवेत्।।
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः।
वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः।।
वलिपलिहन्मेध्यः कामदः सुरवदः सदा।
मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम्।
आयुर्वृद्धिकरं पुसां प्रजाजननमुत्तमम्।
क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित।।
सिताचन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित्।
शुक्तपाण्ड्वामयांशूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत्।।
योगवाहित्विदं सेव्यं कान्ति श्री बलवर्धनम्।
सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमादाशतम्।। र०वि०, पृ० -६४

को चलाते जाएं। जब सब औषध अच्छी तरह से पिघल जाए तब उसमें मीठा तेलिया चूर्ण१/१६ भाग मिलाकर नीचे गोबर बिछाकर ऊपर केले का पत्ता बिछा दे और समस्त औषध द्रव्य इस केले के पत्ते पर डालकर, दूसरे केले के पत्ते से ढ़क दे, ऊपर उसके गोबर बिछा दे। १०-१५ मिन्ट बाद स्वांग शीतल होने के बाद मारिच और अद्रक के रस के साथ इस रस को एक रत्ती की मात्रामें सेवन करने से ६ प्रकार की विद्रधि सात प्रकारके वर्त्मरोग सब प्रकारके क्षय रोग तथा विशेषकर पाण्डु संग्रहणी और आठ प्रकार के गुल्म रोग यकृत और प्लीरोग जठररोग ,प्रमेह, सोमरोग, प्रदर,अग्निमांद्य समस्त उदावर्तरोग नष्ट होते हैं। यह रस दुसाहय विद्राधि या केन्सर को भी नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन से असात्म्य पदार्थ भी सात्म्य हो जाते हैं ।[1]

१- रसोपरसलोहानि कार्षिकाणि पृथक् पृथक्।
तेशु लोहानि सर्वाणि पाषाणाः कठिनास्तथा।।
धनसत्वं च तत्सर्वं भस्मीकृत्य प्रयोजयेत्।
रत्नानि वल्लतुल्यानिभस्मीकृत्य च सर्वशः।।
एभिश्चतुर्गुणः सुतो गन्धस्तस्माच्चतुर्गुणः।
कृत्वा कज्जलिकां ताभ्यां क्षिपेल्लोहस्य भाजने।।
प्रद्राव्य बदरांगारैर्निक्षिपेत्तदनन्तरम्।
रसोपरसलोहानां रत्नानामीप सर्वशः।।
चूर्णं भस्म च निक्षिप्य काष्ठेनाऽऽलोडय मेलयेत्।
ततश्च षोडशांशेन मिश्रयित्वाऽरुणं विषम्।।
गोमयोपरि निक्षिप्ते निक्षिपेत्कदलीदले।
पत्रेणान्येन रम्भायाः समाच्छाद्य प्रयत्नतः।।
कराभ्यां चिपटीकृत्य क्षिपेदुपरि गोमयम्।
ततः शीतं समाहृत्य चूर्णयित्वा च पर्पटीम्।।
विनिक्षिपेत्करण्डान्तः सम्पूज्य रसभैरवम्।
सर्वेश्वराभिधानेयं पर्पटी परिकीर्तिता।।
सर्वलोकहितार्थाय नन्दिनेयं विनिर्मिता।
रक्तियुक्ता समानेया मरिचार्द्रसमन्विता।।
विद्रधौ षट्प्रकारायां देया वदर्मसु सप्तसु।
क्षयरोगेषु सर्वेषु पाण्डुरोगे विशेषतः।।
ग्रहणीरोगभेदेषु गुल्मेष्वटविधेषुच। ×
मूलरोगेष्वशेषेषु प्लीहायां यकृदामये ।
प्रमेहे सोमरोगे च प्रदरे जठरार्तिष।
विशेषेण च मन्दाग्नौ सर्वेष्वावर्तकेषु च।।
अनुक्तेष्वपि रोगेषु तत्तदोचित्ययोगतः।
रसोऽयं खलु दातव्यः शिवतुल्यपराक्रमः।।
यद्यदद्रव्यमसात्म्यं हि जनानामुपजायते।
तत्सर्वं सात्म्यमायाति रसस्यास्य निषेवणात्।।
दुसाध्यो विद्रधिर्मासाच्चअनितमायाति निश्चितम्।। र०वि०, पृ० -६५

३६- हीरा भस्म पांच रत्ती, पन्ना भस्म ५ रत्ती, माणिक्य भस्म सात रत्ती, पुखराज भस्म सात रत्ती, नीलमभस्म नौरत्ती, वैदेर्यमणिभस्म दस रत्ती, गोमेदभस्म ११ रत्ती, मोती भस्म १२ रत्ती, प्रवाल भस्म १३ रत्ती, वैक्रान्त, स्वर्णमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक भस्म ८१- ८१ माशा, पारद गन्धक की कज्जली समस्त द्रव्य से तिगुणी इन सभी को मिलाकर बकरी के दूध की दो दिनतक भावना देकर पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बनाकर और बांस ककोड़े की जड़ की भावना देकर इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके बीस उपंली में फूंक कर सौलह बार बांझ ककोड़े की भावना देकर उपलो को आंच देकर इस रस के सेवन से दीपन पाचन रूचिवर्धन, वीर्यवर्धन एवं गर्भिणी रोगनाशन होता है, पाण्डु और योनि रोग नष्ट कर सन्तति प्रदान करने में तथा सौभाग्य दान में सर्वश्रेष्ठ है ।[1]

१- वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
वैदूर्य चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा।।
पंचगुंजामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
तत्तन्त्रोक्ताविधानेन भस्मीकुर्यात् प्रयत्नतः।।
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रान्तसम्भवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्विमलभस्म च।।
सर्वतस्त्रिगुणां तुल्यां रसगन्धककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य छागीदुग्धेन तद्द्वयहम्।।
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।
वन्ध्याककर्कोटकीचूर्णक्वाथेन पीरमर्दयेत्।।
काननोत्पलविंशत्या रत्नभागोत्तराभिधः।।
महावन्ध्यादिवन्ध्यानां सर्वासां सन्ततिप्रदः।
देवी शास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वन्ध्यत्वरोगनुत्।।
सोऽयं पाचनदीपनो रूचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी
सर्वव्याधिविनाशनो रितकरः पाण्डुप्रचण्डार्तिनुत्।
धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद् योषितां
निर्दोषः स्मरमन्दिराम यहरो योगादशेषार्तिनुत्।। र० वि०, पृ०- ६६

२- मुक्ता भस्म- में अन्य भस्मों को मिलाने से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार इस प्रकार बताया गया है-

मोती, प्रवाल, वैदूर्य, शंख, स्फटिक, अंजन, चन्दन, कांच(Glass=Glesum=Akind of qwartz= प्राकृतिक कांच) मदार के मूल की छाल, छोटी इलाची, सेंधानमक, कालानमक, ताम्र (copper) लोह, चाँदी, सौगन्धिक कसेरू, जायफल,सन के बीज और अपामर्ग के बीज 'निष्तुष' छिलके निकाले हुए'इन द्रव्योंको समान मात्रा में लेकर इनका चूर्ण बना लेना चाहिए। इन मुक्तादि चूर्ण का मधु और घृत के साथ सेवन करने से हिक्का, श्वास- कास रोग नष्ट हो जाते हैं। इस योगका नेत्रों में अंजन करने से तिमिर(Amaurosis)नामक नेत्र रोग,कांच(तिमिर की उत्तरावस्था में एक विशेष लक्षणात्मक रोग युक्त प्रकार) नीलिका (लिंगनाश नीलिका कांच-तिमिर की दूसरी अवस्था-मोतिया बिन्द- catarct), पुष्पक(फूला-opacity of the carnia),पैल्य (अपरिक्लिन्न वर्त्म-पलक का ढीला होना-परंतु अश्रुस्राव न होना=ptosis,Blepharo ptosis,का एक भेद), नेत्राभिष्यन्द (conjauctivitis) और अर्म (नाखूना- pterygium) आदि रोग नष्ट होते हैं।'

१- कुटकी और गेरू (गैरिक-स्वर्ण गैरिक=Hameetite) एवं मुक्ताभस्म को समान मात्रा में मिलाकर बिजौरे नींबू के रस के साथ अथवा मधु के साथ ४ रत्ती से दो माषा पर्यन्त लेने से हिक्का रोग नष्ट हो जाता है। ताम्रभस्म एकसे तीन रत्ती पर्यन्त मधुके साथ सेवन करने से भी हिक्का रोग नष्ट होता है ।[२]

२- वातादि दोषों में १/२ रत्ती से १रत्ती पर्यन्त मात्रा में मुक्ता भस्म लेकर उसमें कपूर मिलाने के बाद जायफल मिलाने से जो चूर्ण तैयार होता है उसे मधु के साथ सेवन करने से सन्निपातिक अतिसार एवं रक्तातिसार जैसे रोग नष्ट होते हैं ।[३]

१-मुक्ताप्रवाल-वैदूर्यशंखस्फटिकमंजनम्।
ससारगंधकाचार्क-सूक्ष्मैला लवणद्वयम्।।
ताम्रायोरजसी रूप्यं सौगन्धिक-कशेरूकम्।
जातीफलं शणाद्बीजमपामार्गस्य तण्डुलाः।।
एषां पाणितलं चूर्णं तुल्यानां क्षौद्रसदिर्पषा।
हिक्कां श्वासं च कासं च लीऽममाशु नियच्छति।।
अंजनात्तिमिरं काचं नीलिकां पुष्पकं तमः।
पैल्यं कण्डुमभिष्यन्दमर्म चैव प्रणाशयेत्।। र० वि०,पृ०-१०१

२- कटुकागैरिकाभ्यांच मुक्ताभस्म तथैवच।
बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम्।।

३- मुक्ता भस्मेति नामेदे दोषं दृष्टवा प्रकल्पयेत्।
गुंजार्धमेकगुंज वा कपूरिण सुवासितम्।।
जातोफलादि-संयुक्तं रहस्यं परमं मतम्। र० वि०,पृ०-१०२

३- मुक्ता भस्म के आठ भाग, प्रवाल भस्म के चार भाग, खुरक बंग भस्म दो भाग, शंख भस्म एक भाग और शुक्ति भस्म एक भाग-इन पाँचों द्रव्यों को खरल में लेकर ईखके रस में ६ घण्टे तक मर्दन करके गोला बना लेना चाहिए । इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुटमें फूँक देना चाहिए। ईखके रसके समान ही गोदुग्ध,विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावरी, तुलसी और (हंसपदी==Adiantum Lumilatum,No. हंसराजादि वर्ग Poly podiaceae) इन द्रव्यों के रस में क्रमशः पाँच-पाँच बार क्रमशः भावना देकर पाँच-पाँच बार लघु पुट में फूँक देना चाहिए । इस रस को पिप्पली चूर्ण में चार रत्ती की मात्रा में मिलाकर चिरकालिक प्रसूता गौ के दुग्ध के साथ सेवन करने एवं प्रतिदिन स्वल्पाहार करते रहने से जीर्ण-ज्वर(पुराना बुखार-chronic fever) और क्षय (शरीर के अंग प्रत्यंगों का दुर्बल होना-Atrophy) रोग नष्ट होते हैं ।[१]

४- पारद,गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें और इस कज्जली में स्वर्ण, अभ्रक, मोती,लोह और वंशलोचनभस्म समान मात्रामें मिलाकर शिलाजीत और कपूर समान मात्रामें मिला लेना चाहिए। इस चूर्णको त्रिफला क्वाथ से घोटकर एक-२ रत्ती की गोलियां बनाकर मात्रानुसार शतावरी क्वाथके साथ इस रस के सेवन से तत्वोन्माद नष्ट होता है।[२]

पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लेना चाहिए। इस कज्जली में स्वर्ण, चाँदी, ताम्र और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर इसमें मिला लें। इसके पश्चात् त्रिकुटा, मैनसिल और कस्तूरी भी समान मात्रा में लेकर इस में मिला लेना चाहिए । इन समस्त द्रव्यों को पानी में घोट कर दो-दो रत्ती की गोलियां बनालें। इस का सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वरों का नाश होता है ।[३]

१-मुक्ताप्रवालखरबंगककम्बुशुक्ति-भूतिं वसूदधिदृगिन्दुसुधाशुभागाम्।
इक्षोररसेन सुरभेः पयसा विदारी-कन्यावरीसुरसहयपदीरसैश्च।।
सम्मर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिः,दद्यात् पुटानिमृदुलानि च पंच पंच।
पंचामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्य, गुंजाचतुष्टयमितं चपलारजश्च।।
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनाम् दुग्धेन च प्रपिबतः खलु चाल्पभोक्तुः।
जीर्णज्वरः क्षयमियादथ सर्वरोगाःस्वीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति।। र० वि०, पृ०-१०३

२- हेमाभ्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतुकायसी।
तुगाक्षीरं शशांकञ्च भावयित्वा वराम्भसा।।
रक्तिमात्रा वटीः कृत्वाच्छायायां परि शोषयेत्।
शतावर्य्य म्भसा शान्त्यै तत्वोन्मादस्य पाययेत्।। तदेव

१- हाटकं रजतं तामं मुक्ता गन्धकपारदौ।
त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् पृथक्।।
जलेन वतिका कार्या द्विगुंजाफलमानतः।
चिन्तामणिरसो हयेष जवराष्टानां निकृन्तनः।। र० वि०,पृ०-१०४

४- स्वर्ण, चाँदी, ताम्र और मोती भस्म, मदार मूलत्वक् चूर्ण, समुद्रफेन, त्रिफला, गुडूचि, सोंठ, पीपल,हल्दी और मुलेठी का चूर्ण तुत्थभस्म, शंखभस्म और प्रवालभस्म इन समस्त औषधों को समान मात्रा में जेकर मुलेठी के क्वाथ को भावना देकर छोटी-छोटी गोलियां बनाकर सेवन करने से समस्त उपद्रवयुक्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं।[1]

५- स्वर्ण, मोती, ताम्र और कान्त लोह भस्म का एक-एक भाग सेवन करने से समस्त प्रकार की हिचकी एक ही मात्रा के सेवन से नष्ट हो जाती है।[2]

६- पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इसमें स्वर्ण, अभ्रक, लोह और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिए। आवले के रस में घोटकर एक-२ रत्ती की गोलियां बनाकर मधु और तिल पिष्टी के साथ अथवा मधु और शर्करा के साथ अथवा मक्खन के साथ इस रस के सेवन करने से वातज, कफज और पित्तज सुरापान जन्य रोग निश्चय ही नष्ट होते हैं।[3]

७- बंग स्वर्ण, कान्तलोह, पारद और मोतीभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर के चूर्ण इन सभी को समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो माशे की गोलियां बना कर, इसके सेवन के बाद दूध और चावल खाने चाहिए। यह रस

१-स्वर्ण रूप्यार्कमुक्तार्को वार्धिफेनवरामृताः।
शंखव्योष-निशातुत्थप्रवालं मधुयष्टिका।।
सर्वं च क्लीतकाम्भोभि प्रपिपष्टं वटिका हरेत्।
अशेषनयनांतांस्तदुपद्रवदुस्तरान्।। र० वि०, पृ०-१०४

२- हेममुक्तार्ककान्तानामं भस्म वल्लमितं परम्।
वीजपूररसक्षौद्रसौवर्चलसमन्वितम्।।
हन्ति हिक्काशतं सत्यमेकमात्राह्ययत्नतः।।
का कथा पंचहिक्कानां हरणे सूत उच्यते। तदेव- - -

३- हेमाभ्रंच रसं गन्धमयो मौक्तिमेव च।
धात्रीरसेन सम्मर्द्य गुंजामात्रां वटीं चरेत्।।
भक्षयेत्प्रातरूत्थाय तिलक्षोदमधुप्लुतामम।
सिताक्षोद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह।।
अयथापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः।
गदाःसर्वे किनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात्।। तदेव- - पृ०-१०५

बंग स्वर्ण, कान्तलोह, पारद और मोतीभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर के चूर्ण इन सभी को समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो माशे की गोलियां बना कर इसके सेवनके बाद दूध और चावल खाने चाहिए। यह रस पुराना प्रमेह, मधुमेह और स्वप्नदोषादि रोगों को तीन दिन में ही शान्त करता है।[1]

८- शुद्ध पारद स्वर्ण माक्षिक भस्म तथा स्वर्ण भस्म का एक-एक भाग, मोती भस्म का १/२ भाग शुद्ध गन्धक के दो एवं गन्धक की कजली बना लेनी चाहिए। उसके बाद अन्य औषधि का सम्मिश्रण करके कटेली स्वरस, बकरी दुग्ध मुलेठी क्वाथ एवं पान के रस की सात-सात भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियो बना लेनी चाहिए। पिपली चूर्ण एवं मधु के साथ सेवन करने से श्वास कास जैसे रोगों का नाश होता है।[2]

९- अभ्रकभस्म का एक भाग, रस सिन्दूरके दो भाग, शंखभस्म के तीन भाग, मोती भस्म का १/२ भाग, कचूर चूर्ण १/२ भाग, त्रिफला चूर्ण का एक भाग इन सभी को परस्पर मिलाकर अडूसे के रसमें खूब घोट कर आधी रत्ती को गोली बनाकर अद्रक रस या मधु रस के साथ सेवन करने से कफज अग्निमांद्य और परिणामशूल का विनाश होता है।[3]

१-मृतवंग सुवर्णंच कान्तलौहंच पारदम्।
मुक्ता गुडत्वचंत्तैव सूक्ष्मैलापत्रकेशरम्।।
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत्।
द्विमाषां वटिकां खादेद् दुग्धान्न प्रपिबेत्ततः।।
प्रमेहं नाशयंत्याशु केशरी करिणं यथा।
शुक्रप्रवाहं शमयेत् त्रिरात्रान्नात्र संशयः।।
चिरजातं प्रवाहंच मधुमेहंच नाशयेत्।। र० वि०,पृ०- १०५

२- पारदं माक्षिकं स्वर्णसमाशं परिकल्पयेत्।
पारदार्द्ध मौक्तिकंच सूताद द्विगुणगन्धकम्।।
अभ्रंचैव तथा योंज्यंव्योम्नो द्विगुणलौहकम्।
कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक्।।
यष्टिमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च।
भावयेत् सप्तवारंच द्विगुंजां वटिकां भजेत्।।
पिप्पली-मधुसंयुक्तां श्वासकास विमर्दिनीम्। तदेव- पृ०-१०६

३- अभ्रकं रस सिन्दूरं शंखभस्म च मौक्तिकम्।
एकभाग-द्वित्रिभागा ह्यर्धभागं च मौक्तिकम्।।
कर्चूरं मौक्तिकार्ध स्यात् त्रिफला कर्षसम्मिता।
सर्वं सुखल्वे सम्मर्घ दिनं सिंहास्यतोयतः।।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा रक्तिकार्धप्रमाणतः।
आर्द्रकस्य रसेनैव मधुना सह लेहयेत्।
श्लेष्मोल्वणं वह्निमान्द्यं शूलं सपरिमाणजम्।
श्लेष्मान्तको रसो नाम विनिहन्त्यनुपानतः।। तदेव- - -

९- स्वर्ण, चाँदी मोती, लोह, अभ्रक और स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा मुलेठी, पीपल, काली मिरच और सोंठ का चूर्ण तथाशिलाजीत को समान मात्रा में लेकर घोट लेना चाहिए । घोटने के बाद श्वेत तथा कृष्ण भृंगराज के स्वरस की भावना देनी चाहिए । प्रगाढ़ हो जाने पर दो-दो रत्ती को गोलियां बना कर सेवन करने से वातज पित्तज एवं कफज प्रमेहों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त कष्टसाध्य मधुमेह तक को नष्ट कर देता है ।[1]

१०- पारदभस्म और स्वर्णभस्म का एक-एक निष्क, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और मूल के क्वाथ और काजी में घोटकर गोला बनाकर इस गोलेको लवण से भरी हुई हांड़ी के मध्य में रखकर पाक करना चाहिए । स्वांगशीत होने पर इसे काली मिर्च और घृत के साथ अथवा मधु और पीपल चूर्ण के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा नष्ट होता है ।[2]

११- पारद एक भाग, स्वर्ण भस्म एक भाग, मोतीभस्म दो भाग, गन्धक दो भाग सुहागा भस्म एक भाग लेकर प्रथम गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों को उसी में डालकर काजी से घोटकर एक गोला बना ले। इस गोले को शरावसम्पुट में डालकर नमक से भरी हुई हांड़ी के मध्य में रखकर चार प्रहर तक गर्म कर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को पीस लेना चाहिए। चार रत्ती की मात्रामें मारिच चूर्ण के साथ अथवा दस पीपल के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से प्रबल राजयक्ष्मा का नाश होता है ।[3]

१- स्वर्ण रौप्यं मौक्तिकंच विशुद्धंच शिलाजतु।
लौप्मभ्रं तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली ।।
मरिचं विश्वकंचेति सर्वमेकत्र कारयेत्।
विमर्द्यं प्रहरं यत्नात् कज्जलाकृतिसन्निभम्।। र० वि०, पृ०-१०७

२- रसभस्म स्वर्णभस्म निष्कं निष्कं प्रकल्पयेत्।
शंखगन्धकमुक्तानां द्वौ-द्वौ निष्कौ तु चूर्णयेत्।।
मुक्ताभावे वराटी वा रसपादं च टंकणम्।
वहन्यारनाल-क्वाथेन मर्दयेत् प्रहरद्वयम्।।
तद्गोलकं विशोष्याथ भाण्डे लवण पूरिते।
पचेद्यामचतुष्कंच मृगांकोऽयं महारसः ।।
रोगराजनिवृत्यर्थ चतुर्गुंजामितं घृतैः।
दातव्यं मरिचैः सार्धं पिप्पली-मधुनापि वा।। तदेव- - -

३- स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत्।
गन्धकंच समं तेन रसतुल्यन्तु टंकणम्।।
तत्सर्व गोलकं कृत्वा काजिकन च पेषयेत।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम्।।
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्मनिकृन्तनः।
गुंजाचतुष्टयंचास्य मरिचै सह भक्षयेत्।
पिपलीदशकैर्वर्णपि मधुना सह लेहयेत्।
वृन्ताकबिल्वतैलानि कारवेल्लंच वर्जयेत्।। तदेव- - -

१२- शुद्ध पारद, गन्धक, स्वर्णभस्म, प्रत्येक का एक-एक भाग लेकर और उसी के अनुसार मोती भस्म के दो भाग, यवक्षार के १/२ भाग लेकर इन सभी को पूरी तरह घोट लेना चाहिए और कांजी से मर्दनकर गोला बना लेना चाहिए। इसे शरावसम्पुट में रखकर नमक से पूरित हांडी में नमक के मध्य में रखकर एक दिन पर्यन्त चूल्हे पर रख कर पकाना चाहिए। हांडी के स्वांग शीतल होने पर औषध को तीन रत्ती की मात्रा में पीपल चूर्ण अथवा घृत या मधु के साथ सेवन करने से क्षय अग्निमांद्य एवं संग्रहणी आदि रोगों का नाश करता है।[1]

१३- स्वर्णभस्म का एक भाग, मोती भस्म के दो भाग, शुद्ध हिंगुल के तीन भाग इन सबको मिला कर मक्खन में घोटने के बाद नींबू के रस में भी घोटना चाहिए। नींबू के रसको घोटना चाहिए जबतक कि उसमें से मक्खन की स्निग्धता नष्ट हो जाए। दो रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करते हुए, यह रस अग्नि को प्रदीप्त करते हुए जीर्णज्वर एवं कास का नाश करता है।[2]

१३- शुद्ध पारद पाँच तोला, शुद्ध गंधक पाँच तोला, मोती भस्म पाँच तोला, तीक्ष्ण लोह भस्म ५ तोला, तुत्थ भस्म पाँच तोला लेकर प्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें। इसके बाद इस कज्जली में शेष औषधियां मिलाकर तुलसी, कोयल, चित्रक कलिहारी, मृंगराज (भंगरैया) के स्वरस की भावना देनी चाहिए। इसके पश्चात् शराव संम्पुट में रखकर मन्दाग्नि में संस्वेदन करके सर्वांग शीतल होने पर इसे निकालकर इस समस्त द्रव्य का चतुर्थांश अर्थात ६ तोला शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण और २५ तोले कपर्दिका भस्म मिलाकर अद्रक और जम्भीरी नींबू की क्रमशः भावना देकर सुखा लेना चाहिए। काली मिरच और मधु के साथ एक माश की मात्रा में सेवन करने से ग्रहणी, पाण्डु, गुलम

१- रसवलितपनीयं योजयेत्तुल्यभागं, तदनु युगलभागं मौक्तिकानां शुभानाम्।
यवजचरणभागं मर्दयेत्सर्वमेतद् दिनमपि तुषवारा गोलकं लध्वमत्रे।।
विधाय मुद्रां विदधीत भाण्डे चुल्लयां समुद्रे लवणेन पुर्णे।
दिनं पचेच्चानु मृगांकनामा क्षयाग्निमान्द्यग्रहणी विकारे ।।
योज्यः सदावल्लिजसपिर्षा वा कृष्णामधुभ्यां सततं त्रिगुंजम्।
वर्ज्य सदा पित्तकरं हि वस्तु लोके शवत्पययविधिर्निरुक्तः।। र० वि०, पृ०-१०८

२- स्वर्ण मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्धया प्रदिष्टं खर्पर्य प्रथममोखलं मर्दयेतं म्रक्षणेन।
यांवत्स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावद। गुंजाद्वन्द्व मधु चपलयामालती प्राग्वसन्तः।।
सेवितोऽयं हरेत्तूर्ण जीर्णंच विषमवरम। व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम्।। तदेव- -

और अतिसार जैसे रोगों का नाश होता है ।[1]

१४- तुत्थ भस्म दो निष्क (१०माशा) शुद्ध पारद एक निष्क (५माशा) शुद्ध वत्सनाभ (मीठा तेलिया) ५माश, लोह भस्म १० माशा, शुद्ध गन्धक और मोती भस्म प्रत्येक १/४ कर्ष लेकर सर्वप्रथम पारद की कज्जली बनाकर अन्य औषधियों को भी कज्जली में मिला लेना चाहिए । अग्निपर्णी, विष्णुक्रान्ता, भृंगराज अद्रक तथा तुलसी स्वरस को एक दिन भावना देकर गोला बना लेना चाहिए। अग्निपर्णी, विष्णुक्रान्ता भृंगराज, अद्रक तथा तुलसी स्वरस की एक दिन भावना देकर गोला बना लेना चाहिए । इस के बाद लांगली मूल का उस गोले पर लेप करके शराव सम्पुट में बन्द करके गर्म कर लेना चाहिए। सर्वांग शीतल होने पर औषध को निकालकर औषध का अर्धपाद मुगांक पोटली रस और समस्त औषध से द्विगंण शुद्ध करके इस चूर्ण को काली मिर्च के चूर्ण एवं मधु के साथ एक रत्ती से दो रत्ती की मात्रा में सेवन करने से क्षय, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, कास, पाण्डु और गुल्म का नाश करने में उपयुगी हैं ।[2] – उपयोगी

१५- पारद, स्वर्ण और मोती भस्म के चार-चार भाग, सुहागा का एक भाग,गंधक के १३ भग इन सभी को कांजी से घोटकर गोला बनाकर इस गोले पर कपड़ा लपेटकर मिट्टी का लेप करके सुख लेना चाहिए और एक दिन बालु का यन्त्र में गरम करके स्वांशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर पीस लेना चाहिए। मधु और काली मिरच के चूर्णके साथ इस रस के सेवन से राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है । २

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - १०६

२- निष्को द्वौ तुत्थभागस्य रसादेकं सुसंस्कृतात्।
निष्कं विषस्य द्वौ तीक्ष्णात् कर्षांशं गन्धमौक्तिकात्।।
अग्निपर्णी-हरिलता-भृंगार्द्रसुरसारसैः।
मर्दितं लांगलीकन्दप्रलिप्ते सम्पुटे पचेत्।।
अर्धपादं च पोटल्याः काकिन्यौ द्वे विषस्य च।
लिहेन्मरिचचूर्णं च मधुना पोटलीसमम्।।
क्षयग्रहण्यतीसाखह्निदौर्बल्यकासिनाम्।
पाण्डुगुल्मवतामेष महावीरो हितो रसः।।
अतिस्थूलस्य पूयासृक्कफानुद्गमतः क्षये।
न योजयेत क्षीररसान् विरूद्धक्रमतत्वतः।। र०वि०,पृ० ११०

२- सूतभस्मसमहेमभस्मकं मौक्तिकं च रसपादटंकणम्।
गन्धमत्र कुरु सर्वतुल्यकं चूर्णितं तुषजलेन गोलकम्।।
लेपयेन्मृदुमृदा विशोषितं पाचितं सिकतयन्त्रमध्यतः।
बासरैकमथ शीतलीकृतश्चूर्णितो मरिचमाक्षिकैः प्लुतः।।
भक्षितो हि कुमुदेश्वरो रसो राजयक्ष्मपरिशान्तिकारका।। तदेव, पृ०-१११

१६- पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना कर इसमें स्वर्ण भस्म, रस सिन्दूर, मोती भस्म, सुहागा भस्म, चाँदीभस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में मिलाकर कांजी में घोटकर गोला बना लेना चाहिए । इस गोले पर कपड़ मिट्टी करके नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखकर एक रात्रि पर्यन्ततक पुटपाक कर लेना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीस लेना चाहिए। इस रसको काली मिर्च के चूर्ण और घृतके साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा का शमन होता है ।[१]

१७- रस सिन्दूर, मोती, स्वर्ण, अभ्रक लोह और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर मूंग के बराबर गोलियां बना कर बालक की शरीर- सम्पत्ति एवं आयु को ठीक-ठीक ध्यान में रखते हुए एक गोली अथवा आधी गोली की मात्रा में सेवन करने से यह रस जवर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, गुद दोष के समस्त रोग जिनके कारण बालक माता का दूध नहीं पीता है ।[२]

१८- ताम्र भस्म, चांदी भस्म, अभ्रक भस्म लौह भस्म, मोती भस्म, हिंगुल (शुद्ध) पोहकरमूल, पारद, गन्धक, गूगल, सोंठ मिरच, पीपल, रास्ना, जमालगोटा, त्रिफला, कुटकी, दन्तीमूल, देवदाली, सेंधानमक, निशोथ इन सब को समान मात्रा में लेकर सर्वप्रथम पारद की कज्जली बनाकर इस कज्जली में समस्त औषधों को डालकर एरण्ड तेल डालकर खूब घोटं लेना चाहिए। यह रस आठ प्रकार के उदर रोग, पाण्डु, आनाह, विषम ज्वर, अजीर्ण, आम, कफ, क्षय, सब प्रकार के शूल कास, श्वास, शोथ इन सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। विशेषकर यह 'प्लीहान्तक रस' प्लीहोदर को अवश्य नष्ट करता है ।[३]

१- हेमभस्मरस-भस्मगंधकं मोक्तिकन्तु रसटंकणं तथा।
तारकं गरूडसर्वतुल्यकं काजिंकेन परिमर्द्य गोलकम्।।
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत्।
एकरात्र मृदुसंपुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः।।
वल्लमस्य मरिचैर्घृतान्वितै राजयक्ष्मपरिशान्तयेपिबेत्।। र० वि०, पृ०-११२
२- सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायो हेममाक्षिकम्।
कन्यातोयेन संमर्घ कुर्य्यान्मुद्गमिता बटीः।।
वटिका वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विविच्यच।
क्षीरेण सितया सार्द्धं वालेषु विनियोजयेत्।।
कुमाराणां जवरं श्वासं वमनं पारिगर्भिकम्।
ग्रहदोषांच निखिलान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा।।
कामलामतिसारंच कृशतां वह्निवैकृतम्।
रसःकुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः।। तदेव- - -
३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० - ११२

१९- पारद, गन्धक, बंग और मोती भस्म तथा शिलाजीत इन सब को समान मात्रा में लेकर पाषण भेद, घृतकुमारी, मूर्वा गुडूचि और त्रिफला के क्वाथ को अलग-अलग भावना देकर सुखा लेने के बाद आतशी शीशी में भरकर शीशी के मुख को(उडद का आटा मीठा तेलिया का चूर्ण और पानी को पिटठी बनाकर) बन्दकर शीशी को बालुका यंत्र द्वारा चार पहर की आंच देकर स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर पीस लेना चाहिए। इस रस को चोपचीनी चूर्ण १ माशा और त्रैलोक्य मोहनरस एक रत्ती को पान के बीडे के साथ सेंवन करने से प्रमेह का नाश होता है ।[1]

२०- रस सिन्दूर अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मोती भस्म ओर स्वर्णभस्म समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी क रस में पांच दिन तक घोंटकर एक-एक रत्ती की गोलियां बनाकर दस उत्तम रस के सेवन से आमाशय सम्बन्धी रोग नष्टहोते हैं। बल वीर्य और बुद्धि की वृद्धि होती है और शरीर लावण्यमय हो जाता है ।[2]

२२- रस सिन्दूर एक पल (५तोले) वंशलोचन, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म प्रत्येक को तीन-तीन माशे लेकर इन चारों औषधियों को खरल में घोट लेना चाहिए । इसके पश्चात् वस्त्रपूत अफीम को भी उपर्युक्त चारों औषधियों में मिलाकर घोट लेने चाहिए। घोटते समय थोड़ा- थोड़ा दूध डाल कर धूप में सुखाने के बाद इस औषध का चूर्ण बना कर चार रत्ती की मात्रा में दूधके साथ सेवन करने पर अपने अग्नि बल को ध्यान में रखते हुए मोदक का सेवन अनुपान रूप में किया जा सकता है। इसके प्रयोग के सेवन काल में उष्ण बल का ही प्रत्येक कार्य में उपयोग

१- शुद्धसूतस्तथा वंगभस्म शिलाजतुः।
मौक्तिकं च समं सर्वं शुष्कमादौ विमर्दयेत।।
पाषाणभेदक्वाथेन कुमारीस्वरसेन च ।
मूर्वागुडूचीत्रिफलाकषायेण पृथक पृथक्।।
दिनानि पंच सम्मर्द्य धर्मे संशोषयेत्ततः।
काचकूप्यांविनिक्षिप्य मुखं तस्य विमुद्रयेत्।।
माषन्तविषचूर्णानां कल्केन भिषगुत्तमः।
संस्थाप्य बालुकायन्त्रे चतुर्यामं विपाचयेत्।।
चोपचीनीयचूर्णेन माषमानेन योजितः।
त्रैलोक्यमोहनो नाम्ना गुंजामात्रो रसोत्तमः।
पर्णखण्डेन दातव्यः प्रमेहमन्थनः परः।। र० वि०, पृ०- ११३

२- सिन्दूरमभ्रन्त्वथ हेममाक्षिकं मुक्ताफलं हेंम च तुल्य भागिकम्।
कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरान् गुंजाप्रमाणां वटिकां विधेहि च ।।
रसोत्तमस्यास्य निषेवणारो ह्यामाशयोत्यामयरोगसंघतः।
गत्वा विमुक्तिं बलवीर्यसयुतो मेधान्वितः सौम्यवपुश्च जायते।। तदेव- पृ०- ११४

करना चाहिए । जैसे शौच एवं जलपान में उष्ण जल का ही सेवन करना चाहिए । इस रस के सेवन से ग्रहणी रक्तातिसार प्रसूति का रोग तथा अग्निमाद्यादि रोगों का विनाश करके अग्नि को प्रदीप्त करते हुए शरीर को हृष्टपुष्ट और बलवान करता है ।[1]

२३- शुद्ध पारद का एक भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म के दो भाग, तुत्थभस्म के दो भाग शुद्ध गंधक का एक भाग, मुक्ताभस्म का एक भाग, शुद्ध वत्सनाभ का एक भाग लेकर सर्वप्रथम गंधक की कज्जली बना कर समस्त औषधियों को इसमें मिलाकर खरल कर लेना चाहिए। भंगराज, अदरक, तुलसी, केवांच, हल्दी,कलिहारी इन प्रत्येक की जड़ के रस की एक-एक दिन भावना देकर एक-एक माशे की वटिका बनाकर काली मिर्च के चूर्ण अथवा मधु के साथ सेवन करने से संग्रहणी, अतिसार पाण्डु निर्बलता, गुल्म, श्वासकास, हिक्का और अरूचि जैसे रोगों का नाश होता है ।[2]

१- पलैकं रससिन्दूरमाददीताथ शाणकम्।
प्रत्येकं वंशजा मुक्ता निरूत्थं हेमभस्मनाम्।।
द्राव्यैदहिफेनस्य शाणं क्षीरे निमज्जितम्।
वस्त्रपूतेन तेनैव तत्सर्व मर्दयेद्भृशम्।।
छायायामातपे वऽथ शोषयेच्चूर्णयेत्ततः।
चर्तुगुंजामितं चूर्णं क्षीरेण यह सेवयेत्।।
सक्षीरमन्नमश्नीयान्नाश्नीयाल्लवणाम्भसी।
यावज्जीर्येत् तावदाद्यं पक्वमांयेन मोदकम।।
शोचमाचमनं कार्यमग्नि पूतेन वारिणा।
वाससाच्छादयेद देहं न स्नायादस्या सेवकः।।
अत्रानुवर्तयेत्सर्वान् नियमान् रससेविनाम्।
चूर्णं रसेन्द्रनामेदं रसे श्रेष्ठं रसायनम्।।
नाशयेद् ग्रहणीं कृत्सनां रक्तातिसारसूतिके।
अग्निमान्द्यादिकं जित्वा दोपयेज्जठरानलम्।।
पुष्टंहृष्टं बलिष्ठंच नरः कुर्याद्धिताशनः। र० वि०, पृ०- ११६

२- निष्कैकं मर्दितं सूतं द्विनिष्कं मृततीक्ष्णकम्।
शिखितुत्थं तीक्ष्णातुल्यं कर्षार्द्ध गन्धमौक्तिकम्।।
विषं निष्कं चैतत्सर्व भृंगार्द्रसुरसारसैः।
अग्निपर्णी हरिद्रा च लांगलीकन्दजैर्द्रवैः।।
मरिचैर्मधुना लेह्या माषैका हंसपोटली।
हन्ति सग्रहणीं चैव अतिसारं च पाण्डुताम्।।
दौर्बल्यं गुल्मं श्वासं च कासं हिक्कामरोचकम्।
क्षौद्रेण विजयानिष्कं लेहयेदनुपानकम्।। तदेव- पृ०- ११६

२४- पारद भस्म पांच तोला, स्वर्ण भस्म पांच तोला, बंगभस्म पांच तोला, मोतीभस्म दस तोला, सुहागा एकतोला- इन पांचों औषधियों को अम्लवेतस के क्वाथ में एक दिन तक घोटने के बाद सात दिन तक जौ की कांजी में घोटकर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को लघु पुट में पाक करके स्वांग शीतल होने पर चूर्णकर स्वर्ण अथवा चाँदी के पात्र में रख देना चाहिए। यह राज-मृगांकरस राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। इसका सेवन एक रत्ती से दो रत्ती तक का ही है ।[1]

२५- मोती भस्म, स्वर्णपत्र (वरक), चांदीपत्र और यवक्षार लें । एक तोला पारद में स्वर्णपत्र और रजतपत्र मिलाकर घोटें और फिर इसमें मोतीभस्म तथा यवक्षार डालकर पुनः घोटकर लाल कमल के स्वरस की एक दिन तक भावना देकर शुद्ध गंधक एक तोला डालकर घोटकर इस द्रव्य को आतिशी शीशी में भरकर शीशी का मुख बन्द कर बालुका यन्त्र में तीन प्रहरतक पाक करके स्वांगशीत होने पर औषध द्रव्य को मुसली के चूर्ण और शर्करा के साथ एक रत्ती की मात्रा में सेवन करने पर यह नंपुसकता को नष्ट करके वीर्य को बनाता है तथा निर्बल और कमजोर शरीर में बल को बढाता है। मूंग की दाल, शाली चावल एवं भैस का दूध और घी इस रस के सेवन काल में पथ्यकर है ।[2]

२६- पारद और गंधक एक-एक तोला लेकर कज्जली बनाकर इसे बंगभस्म, चांदीभस्म, कपूर और अभ्रकभस्म एक-२ तोला मिलाकर स्वर्ण और मोती भस्म तीन-२ माशे डालकर भृगंराज स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य समस्त बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र,पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्त पित्त, वातज, पित्तज और कफज ग्रहणी, आमदोष,मन्दाग्नि, अरूचि, सोमरोग बहुमूत्र एवं समस्त प्रकार की मूत्रज व्याधियां, मूत्रातिसारादि रोग नष्ट होते हैं। दुर्बल व्यक्ति हष्टपुष्ट होता है।

१-मक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च ।
यवक्षारचं तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत्।।
रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत्पत्तलोकृतम्।
मर्दयेच्च पुनर्दत्तवा गन्धकं तदनन्तरम्।।
क्षिप्तवा काचघटीमध्ये सन्निरूध्य त्रियामकम्।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत्।।
रक्तिकैकप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम्।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभगंच नाशयेत्।।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ।
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयो माहिषं हितम्।। र० वि०, पृ०-११७

२- द्रष्टव्य तदेव- पृ० - ११८

यह रस वीर्य की वृद्धि करते हुए बल, वर्ण, तेज ओज और कामशक्ति को बढाता है । इस रस का सेवन बाल वृद्ध सभी को मात्रा, काल का विचार करके कराया जाता है ।[1]

२७- पारद और गंधक एक-एक तोला लेकर कज्जली बनाकर इसे बगभस्म चांदीभस्म,कपूर और अभ्रकभस्म एक-२ तोला मिलाकर स्वर्ण और मोतीभस्म तीन-३ माशे डालकर भृगंराज स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य समस्त बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्त पित्त, वातज, पित्तज और कफज ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरूचि, सोमरोग बहुमूत्र एवं समस्त प्रकार की मूत्रज व्याधियां, मूत्रातिसारादि रोग नष्ट होते हैं। दुर्बल व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है । यह रस वीर्य की वृद्धि करते हुए बल, वर्ण, तेज ओज और कामशक्ति को बढाता है । इस रस का सेवन बाल वृद्ध सभी को मात्रा, काल का विचार करके कराया जाता है ।[2]

१- सुवर्णताराभ्रकताम्रवंग-त्रिलोहनागामृतमौक्तिकानि।
एतत्समं योजय रसस्य भस्म खलवे कृतं स्यात्कृतकज्जलीकम्।।
सुमर्दयेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं तच्छोपयेद् द्वित्रिदिनं च धर्मे।
तत्कल्कमूषोदरमध्यगामि यत्नात्कतं ताक्ष्यपुटेन पक्वम्।।
यामाष्टकं पावकमर्दितं च लक्ष्मीविलासो रसराज एषः।
क्षये त्रिदोषप्रभवे च पाडौ सकामले सर्वसमीरणेषु।।
शोफप्रतिश्यायप्रनष्टवीर्यं मूलामयं चैव सशूल्कुष्ठम्।
हत्वाग्निमान्द्यं क्षयसन्निपातं श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम्।
तारूण्यलक्ष्मी प्रतिबोधनाय श्रीमद्विलासो रसराज एषः।। र० वि०, पृ-११८,११९

२- एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षडदीर्घनिः स्वनात्।।
त्र्यशं बलेर्वराटयाश्च टंगणो रसपादिकः।
पकवनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत्।।
मूषामध्ये न्यसेत कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्।
गर्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत्त्रिशद्वनोपलैः।।
स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत।
ततः खल्लोदरे मर्घ सुधारूपं समुद्धरेत्।।
एतस्यामृतरूपस्य दघाद् द्विगुंजसन्मितम्।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोन त्रिशंदूषणैः।।
मन्दाग्नौ रोगसंघे च ग्रहण्या विषमजवरे।
गुदांकरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः।।
अतिसारे ग्रहण्यांच श्वयथौ पाण्डुके गदे।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च ।
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्दजेषु त्रिजेसायनम्।। तदेव- - -

२८- स्वर्ण, चाँदी अभ्रक, ताम्र का, तीक्ष्णलोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, सीसक और मोती भस्म तथा मीठातेलिया के चूर्ण का एक-एक भाग लेकर इन सभी भस्मों के बराबर पारद भस्म को लेकर मधु के साथ घोटने के बाद दो तीन-दिन तक धूप में रख लेना चाहिए । धूप में जब यह द्रव्य प्रगाढ़ हो जाए तब गोला बनाकर इस के सवांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर चीता के क्वाथकी भावना देकर सुखा लेना चाहिए । इस रस के सेवन से क्षय, त्रिदोषज, पाण्डु, कामला, कतरोग, शोथ, प्रतिश्याय, शुक्रक्षय, अर्श शूल, कुष्ठ, अग्निमांद्य, सन्निपात् श्वासकास का नाश होता है एवं जबानी और लक्ष्मी को बढ़ाता है ।[1]

२९- पारद भस्म का एक भाग, स्वर्ण भस्म के दो भाग,मोती भस्म के चारभाग, शंखभस्म के ६ भाग, शुद्ध गंधक के ६ भाग, कौड़ी भस्म के तीन भाग, सुहागा भस्म के १/४ भाग लेकर सर्व प्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें । इस कज्जली में अन्य समस्त भस्मों को डालकर नींबू के रसकी भावना देकर एक सुदृढ़ मूषा में बन्दकर इस मूषा को एकगर्त में तीस उपलों के मध्य में रखकर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्यको निकाल कर पीस लेना चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में काली मिर्च २९, घृत और मधु के अनुपान से इस रस के सेवन से अग्निमांद्य, ग्रहणी रोग, विषम जवर अर्श, पीनस श्वासकास, अतिसार, पाण्डु शोथ, उपर रोग, यकृतरोग और लोहा रोगों को यह रस नष्ट करता है । इसके अतिरिक्त समस्त सन्निपातों में तथा समस्त रोगों में इस का प्रयोग किया जा सकता है ।[2]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ- ११८, ११९

२- एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षडदीर्घनिः स्वनात्।।
त्र्यशं बलेर्वराटयाश्च टंगणो रसपादिकः।
पकवनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत्।।
मूषामध्ये न्यसेत कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्।
गर्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत्त्रिशद्वनोपलैः।।
स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत।
ततः खल्लोदरे मर्घ सुधारूपं समुद्धरेत्।।
एतस्यामृतरूपस्य दघाद् द्विगुंजसन्मितम्।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोन त्रिशंदूषणैः।।
मन्दाग्नौ रोगसंधे च ग्रहण्या विषमजवरे।
गुदांकरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः।।
अतिसारे ग्रहण्यांच श्वययौ पाण्डुके गदे।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च ।
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्दजेषु त्रिजेसायनम्।। र० वि०, पृ-११८,११९

३०- रस सिंदूर के दो भाग, स्वर्ण कान्तलोह, अभ्रक मोती बंगभस्म का एक -एक भाग इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी के रस में घोंटकर गोला बनाकर इस गोले को सुखाकर और पत्तों से लपेटकर धानके ढेर में दबाकर तीन दिनके बाद निकाल कर दो-दो रत्ती को गोलियां बनाकर अनुपान भेदसे समस्त रोगों में दिया जा सकता है। इस रस के सेवन से वातरोग,पित्तरोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर अर्श,उन्माद मूर्धा, यक्ष्मा, पक्षाघात, शूल और अम्लपित्त का नाश इस प्रकार होता है, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश हो जाता है । इस के अलावा इस को वंशलोचन, मिश्री और त्रिफला क्वाथ के साथ लेने से रोगी व्यक्ति कामदेव के समान देखने में स्वरूपवान हो जाता है । इसके सेवन काल में दुर्बल व्यक्तियों को रात्रि में गौ का दूध पीना चाहिए ।[1]

३१- पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लेनी चाहिए। वैक्रात, चाँदी, ताम्र, लोह, मोती ओर स्वर्ण भस्म समान मात्रा में लेकर कज्जली में मिलाकर अद्रक, भृंगराज और चीता के रस को एक रत्ती की मात्रा में मधु और पीपल चूर्णके साथ सेवन करने से अर्श, क्षय, कास, अरुचि, जीर्ण जवर, पाण्डु, प्रमेह, विषम जवर और वायु रोग नष्ट होते हैं ।[2]

१- विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्ध शुद्धहाटकम्।
तत्समं कान्तलोहं च तत्समं चाभ्रमेव च।।
विशुद्धं मौक्तिचैव वंग च तत्समं मतम्।
कुमारिकारसैर्भव्यं धन्यराशौ दिनत्रयम्।।
ततो रक्तिद्वयमितां वर्तिं कुर्याद्विचक्षणः। वर्ति
योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः।।
वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् वहुमूत्रताम्।
मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयम्।।
उन्मादं मूर्च्छां यक्ष्माणं पक्षघातं हतेन्द्रियम्।
शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा।।
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा ।
भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः।।
रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानां च विशेषतः।
योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्मितः।। र० वि०, पृ०- १२०

२- रसेन्द्रवैक्रान्तकरौप्यताम्रं सलोहमुक्ताफलगन्धहेम।
त्रिर्भावितं चाऽऽर्द्रकभृंग वहिन रसैरजागोपयसा तथैव।।
अर्शः क्षयं कासमरोच कंच जीर्णज्वरं पाण्डुममपि प्रमेहान्।
गुंजाप्रमाणं मधुमागधीभ्याम् लीढं निहन्याद्विषमं च वातम्।।
चिन्तामणिरिति ख्यातः पार्वत्या निर्मितः स्वयम्।। तदेव, पृ०- १२१

३२- मोतीभस्म ६ माशा, कुचला चूर्ण दो दाने, सोने के बर्क १ माशा, चांदी के वर्क तीन माशे केशर एक तोला, जावित्री ६ मासा जायफल एक तोला, अकरकरा दो तोला, छोटी इलाची बीज एक तोला, भीमसेनी कपूर तीन माशा, कंकोल एक तोला-इन समस्त अव्यों को मिलाकर गुलाब जल में तीन दिन तक घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर दूधके साथ सेवन करने से काम शक्ति, स्मरणशक्ति एवं स्तम्भनशक्ति प्रबल हो उठती है। इसका सेवन मुख्यतः शीतऋतु में करना चाहिए।[1]

३३- मोती बंशलोचन, चन्दन सफेद, अबरेश्म, बहमन सफेद प्रत्येक दो-दो तोला, अम्बर, सोने के वर्क और चांदी के बर्क पाँच-५ माशे कस्तूरी दो माशा, चीनी सफेद १५ तोला, गुलाब के फूल १५ तोला, अर्कवेदमुश्क १५ तोला, शहद १० तोला, इन सभी द्रव्यों को मिलाकर एक मशे की मात्रा में हर रोज इस्तेमाल करने से अन्माद व कमजोरी हटती है और काम शक्ति बढती है।[2]

३४- मोती भस्म आठ माशे, ककडी के बीज की मगज एक तोला, कद्दू मगज दस मासा, सफेद चंदन का चूर्ण पांच माशा, गुलाब जल दस तोला, गुलबनफशा सात माशा, गावजबां फूल सात माशा, बंसलोचन सात माशा, केशर तीन माशा, कस्तूरी सात माशा, अम्बर सात माशा इन सभी द्रव्यों को मिलाकर इनमें अनार शर्बत ६तोला, जरिश्क, शर्बत ६ तोला, अर्कवेदमुश्क तीन तोला मिलाकर एक मासा की मात्रा में एक महीनेतक सेवन करने से पागलपन दूर होता है तथा कामोत्तेजक भी है।[3]

३५- वंशलोचन अवरेशम कतरा हुआ, मस्तगी, केसर सम्बुल, मोतीभस्म, कहरूआ गुलसुर्ख प्रत्येक को तीन-तीन मात्रा लेकर माणिक्य, रवेन्द, नागर मोथा, ऊद, हिन्दी, मिचियागन्द, सफेद चन्दन, तुरंज का बक्कल, पत्रज, बुसद(प्रवाल) यशवहरा, तुख्मबादरंज बोया दरबंज, हील, छोटी- छोटी इलायची, जरिश्क, बेदाना, अम्बर, अशहब, सोनेके वर्क चांदी के वर्क प्रत्येक को दो-२ मासे लेकर सेवन करने से यह द्रव्य हृदय और मस्तिष्क को पुष्ट बनाता है। शरीर की दुर्बलता और पाचन शक्ति को बढाता है। पौरूष शक्ति को बढाने में भी यह सहायक सिद्ध होता है।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि० पृ०- १२१

२- द्रष्टव्य तदेव - -

३- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- १२२

४- द्रष्टव्य तदेव - -

रत्नों का शोधन एवं भस्मीकरण

१- हीरे का शोधन- हीरे का शोधन विभिन्न प्रकार से बताया गया है-

१- सर्वप्रथम उत्तम हीरे को कपड़े में रखकर पोटली बनाकर 'दोलायन्त्र' की विधि से कुलथी के क्वाथ अथवा कोदों के क्वाथ अथवा चौलाई के रस में या जयन्ती के रस में लटका कर एक प्रहरतक स्वेदन करना चाहिए । इसके पश्चात् हीरे को निकाल कर उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखाकर हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[1]

२- हीरे के चूर्ण को पोटली में रखकर कोदो के क्वाथ को दोलायंत्र में रखकर सात दिनों तक लगातार आँच देने से हीरे की उत्तम शुद्धि हो जाती है ।[2]

३- सेहुडके दूध में १०० बार डुबाने मात्र से ही हीरे की शुद्धि हो जाती है। कण्टकारी के क्वाथ में दोलायंत्र द्वारा सात दिनों तक लगातार स्वेदन करके से भी हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[3]

४- बहुत ही तेज अग्नि पर एक दृढ मंजूषा में पारद भर कर हीरे को इस मंजूषा में १०० बार डूबोने पर हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[4]

५- कटेली के कन्द के भीतर हीरे को रखकर उपर से वस्त्र लपेटकर कुलत्थ तथा कोदों के क्वाथ में दोलायन्त्र विधि से ३दिन तक स्वेदन करने से हीरे का शोधन हो जाता है ।[5]

६- किसी शुभ दिन में कटेली के कन्द के भीतर हीरे को रख कर और कटेली के कन्द के टुकड़े से छेद को बन्द करके कन्द को भैंस के गोबर से लेप करें। रात्रि में लेप किए हुए कन्द को ४ घण्टे तक उपलों में पकाकर प्रातः काल घोड़े के मूत्र में बुझाना चाहिए। सात बार इसी प्रकार की प्रक्रिया को करने से शुद्ध हीरा प्राप्त हो जाता है अर्थात् हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[6]

१- सि० भै० सं०, पृ० ५२६-५२८

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२६

३- द्रष्टव्य तदेव ,, ,, ,,

४- द्रष्टव्य तदेव ,, ,,

५- कुलत्थकोद्रवक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत्।
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनातद्विशुद्ध्यति।। तदेव- पृ०-२६

६-गृहीत्वाह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरेक्षिपेत्।
महिषीविष्ठयालिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत्।।
त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके।
सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति।। तदेव- पृ०-२६

७- हीरे को कटेली के कन्द में भरकर कोदा के क्वाथ में दोलायंत्र विधि से भी शोधन किया जा सकता है ।[1]

८- हीरे को कटेली के कन्द में भरकर इस कन्द पर मृत्तिका का एक मोटा लेप करने के बाद हीरे को घोड़ के मूत्र अथवा सेहुडके दूध में बुझाने पर हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[2]

६- हीरे को २१ बार तपा-२ कर गधेके मूत्र में बुझानें पर हीरे की शुद्धि हो जाती है ।[3]

२- हीरे का भस्मीकरण-

१- शुद्ध हीरा प्राप्त हो जाने पर हीरे की भस्म बनाई जाती है। शुद्ध किए हुए हीरे को कूट कर बारीक चूर्ण बनाना चाहिए । बारीक चूर्ण को घिसने वाले खरल में डालकर हीरे की मात्रा के बराबर-२ पारद भस्म या रससिन्दूर, शुद्धमैनसिल और शुद्ध गन्धक मिलाकर इसे सम्पुट में बन्दकर गजपुट में रखकर फूंकना चाहिए । स्वांगशीत हीने पर हीरे को निकाल कर सूक्ष्म चूर्ण कर और इसमें शुद्ध मैनसिल और शुद्ध गन्धक मिलाकर पुनःघोंट कर पुट करना चाहिए। इसी प्रकार से बारह पुट ओर देने चाहिए। इस प्रकार से १४ पुट में वज्र की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ।[4]

२- हरताल, गंधक,पार और स्वर्णमाक्षिक और शुद्धीकृत हीरे को रखकर बेर के क्वाथ की सात भावनायें ओर देनी चाहिए। भावना देने के पश्चात् एक गोला बना लें। वारणपुट में इस गोले को सम्पुटित करके उपलों की अग्नि में पाचन करने से हीरे की भस्म हो जाएगी ।[5]

३- पारद गंधक और मनः शिला समान भाग लेकर विशोधित हीरे को उसमें रखकर वारणाख्य पुट द्वारा सम्पुटित करके प्रबल अग्नि में तब तक पाचन करें जब तक अच्छी भस्म न हो जाए। पुनः-पुनः आँच देने के बाद अधिक से अधिक १४ बार पुट देने पर उत्तम भस्म हो जाएगी ।[6]

१- व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाच्येत्।
सप्ताहं कोद्रवक्वाथे कुलिशं विमलं भवेत्।। र० वि, पृ०-३०

२- व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत्।
आहोरात्रात्समुद्धृत्य ह्यमूत्रेण सेचयेत्।।
वज्रीक्षीरेण वा सिंच्यात्कुलिशं विमलं भवेत्।। तदेव- - - -

३- तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रं निषेचयेत्।
पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यास्त्रिसप्धा।। तदेव - - -

४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५४१

५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -३१

६- द्रष्टव्य तदेव - - -

४- हरताल और मनः शिला समान भाग लेकर मजबूत खरलमें विशोधित हीरे को डाल कर तीन साल से लगे हुये कपास की जड़ के स्वरस के द्वारा भावना देने के बाद धाम में सुखाना चाहिए। इसके पश्चात् सम्पुट में रखकर महापुट द्वारा १४ बार फुँकने पर शुद्धभस्म तैयार हो जाएगी।[1]

५- हींग, सेंधा, नमक और कुलथी के क्वाथ में हीरे को २१ बार बुझाने पर हीरे की भस्म प्राप्त होती है। मेढे का सींग, सर्प की हड्डी,कछुवे की खोपड़ी, खरगोश के दांत और अम्लवेतस इन सभी को थूहर के दूध में पीसकर लुगदी बनाने के बाद लुगदी के ही मध्य में विशोधित हीरे को रखकर धोंकनी से धोंकने पर हीरे की भस्म हो जाएगी ।[2]

२- मुक्ता का शोधन-

१- मुक्ता भस्म बनाने के लिए सर्वप्रथम मुक्ता का शोधन किया जाता है। चमकदार उत्तम अनविधे मोतियों को लाकर कपडे की पोटली में बाँधकर 'दुलायन्त्र' की विधि से जयन्ती के स्वरस में एक प्रकार स्वेदन करके पोटली को खोलकर मोतियों को उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सूखाने पर शुद्ध मुक्ता प्राप्त होती है ।[3]

२- एक शराव (चाइना क्ले-चीनी मिट्टी के प्याले) में मोतियों को रखकर सुधोदक(चुने का पानी-(lime water)उस प्याले में भर दें। इस प्याले को लोह त्रिपादिका(Spirit lamp) के द्वारा लगातार दो-तीन घण्टे तक आँच देने से मोती का भली-भाँति शोधन हो जाता है ।[4]

३- मोतियों को एक कपड़े की पोटिली में बाँधकर दीलायंत्र में जयन्ती (Sesbania aegyptica,n.o) शिम्बी वर्ग- (leguminosae.) के अन्तर्गत अपराजितादि अपवर्ग- (papilionaceae) के पत्तों का स्वरस डालकर पोटली को लटकाकर लगातार तीन घण्टे तक स्वेदन करने से मोती का शोधन हो जाता है।

४- मोतियों को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोलायंत्र में अगस्त्य (sesbania Grandiflorior,n.o) शिम्बी वर्ग-leguminosae के अन्तर्गत अपराजितादि उपवर्ग-(popilionaceae) पत्र स्वरस डालकर लोह त्रिपादिका (लोहे की तिपाई- (Tripod) पर रखकर लगातार तीन घण्टे की आँच देकर स्वेदन करने से शुद्ध मुक्ता प्राप्त होती है ।[5]

१-द्रष्टव्य र० वि० पृ० ३१

२-द्रष्टव्य " " "

३-द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५२१

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १००

५-द्रष्टव्य तदेव - - - -

२- मुक्ता का भस्मीकरण-

१- शुद्ध रूप से प्राप्त हो जाने के बाद मुक्ता की भस्म तैयार की जाती है। सर्वप्रथम शुद्ध मुक्ता को खरल में डालकर सूक्ष्म चूर्ण बनाना चाहिए। इस में अर्क गुलाब, गो दुग्ध अथवा घीकुवार का रस इतना ही मिलाना चाहिए। जितना कि चूर्ण द्रव्य में पूर्णतया डूब जाये। फिर इस को मिलाकर थोड़ी-२ देर बाद खरल को धूप में रखकर सुखाना चाहिए। इस प्रकार से घोट कर छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लें। इस द्रव्य को शराव (चाइना क्ले-चीनी मिट्टी के प्याले) सम्पुट में बन्ध कर धूप में सुखाकर 'लघुपुट' में रखकर फूँक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर सकोरेमें से मोती को निकालकर खरल में बारीक पीसना चाहिए। इस भांति से उपर्युक्त प्रकियानुसार कुल तीन पुट देने से मोती की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[1]

२- शोधित मोतियों को खरल में डालकर इसमें गुलाब का अर्क डालकर मर्दन करने के बाद शराव सम्पुट में रखकर लघु पुट में फूंकने के बाद स्वांगशीत होने पर सम्पुट से बाहर निकाल कर पुनः अर्क गुलाब में मर्दन करके शराव सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूंके। यह विधि तीन बार करने से मुक्ताभस्म तैयार हो जाती है।[2]

३- विशोधित मोतियों को एक खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ भली भांति मर्दन करके शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में तीन बार फूंकने पर मुक्त भस्म चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण की प्रस्तुत हो जाती है।[3]

३- प्रवाल का शोधन-

१- उत्तम प्रवाल की शाखाओं को लेकर छोटे-छोटे टुकड़े करके कपड़े को पोटली में बांधकर 'दोलायन्त्र' की विधि से जयन्ती (अरणी) के स्वरस(अथवा क्वाथ) से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर स्वेदन करना चाहिए। जयन्ती के स्थान पर चौलाई का स्वरस भी लिया जा सकता है। पोटली में रखे हुए प्रवाल को निकाल कर उष्णदिक से प्रक्षालन करना चाहिए। इस से प्रवाल की शुद्धि हो जाती है।[4]

२- प्रवाल को एक पके हुए सिकोर में रखकर आग पर तपाना चाहिए। जब खूब तप जाए तो घीकुवार के रस में बुझाना चाहिए। इस प्रकार ७ बार तपा-तपा कर बुझाने से

१-द्रष्टव्य सि० भै० सं०, पृ०-५३७

२-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१००

३-द्रष्टव्य तदेव -- --

४-द्रष्टव्य सि० भै० सं०, पृ०-५२१

मूंगा शुद्ध हो जाता है । अगर विशेष शुद्धि करनी हो तो इस प्रकार सात बार तपा-तपा कर चौलाई रस में बुझा लेना चाहिए। तपानेके पश्चात् प्रवाल का रंग बदल कर मैला या मटमैला हो जाता है ।[1]

४- चावल के पानी में दोलायंत्र द्वारा एक याम तक पोरस्विन्न करने से प्रवाल की उत्तम शुद्धि हो जाती है ।[2]

५- सज्जीक्षार के पानी के साथ एक याम तक पकाने से भी उत्तम शुद्धि हो जाती है । ज्यन्ती के स्वरस में एक याम तक परिस्विन्न दोलायंत्र द्वारा करने से भी प्रवाल की शुद्धि हो जाती है।[3]

२- प्रवाल का भस्मीकरण-

१- शुद्ध प्रवाल को बारीक चूर्ण करके इसमें घीगुवार का रस इतना डालें कि प्रवाल चूर्ण रस में पूर्णरूप से डूब जाए। इसे पूर्णता मिलाना चाहिए । बीच-२ में कुछ समय के लिए खरल को धूप में रखकर सुखा लेना चाहिए। जब टिकिया बनाने योग्य गाढ़ा हो जाए तब उसे धूप में सुखाकर शराव-सम्पुट में बन्द कर ऊपर से सन्धिबंधन करके धूप में सुखाना चाहिए । इसे काण्डों की आंचसे पुट देना चाहिए। स्वांगशीत हो जाने पर प्रवाल को निकाल कर खरल में डालकर पीसना चाहिए। तदन्तर इसी प्रक्रिया से कुल तीन पुट देने से प्रवाल की श्वेतवर्ण को उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ।[4]

२- शुद्ध मूंगा ८ तोले, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध आंवला, सार गन्धक १ तोला लेकर पहले गन्धक और पारे को खरल में डालकर कजली कर लेना चाहिए । जब कजली हो जाए तब उस कजली में शुद्ध मूंगा मिलाकर घीकुवार का रस डालते हुए मिलाना चाहिए। ज्यों-ज्यों रस सूखता जाए, यों-त्यों नया रस डालते रहना चाहिए। इस प्रकार १२ घण्टे की घुटाई होने के पश्चात् उसे सराव-सम्पुट में रखकर कपड़ मिट्टी कर के सुखा लेना चाहिए और उस सराव सम्पुट को एक गजपुटकी आग में फूंक लेना चाहिए। स्वांगशीतल होने पर उसको खोलकर सुन्दर सफेद गुलाबी रंग माइल मूंगा भस्म तैयार हो जाती है।[5]

३- शुद्ध प्रवालको लेकर विछिया बूटीके रसमें खरलकर के शराव सम्पुटमें रखकर गजपुट में फंक देना चाहिए। इस प्रकार तीन बार गजपुट में फूंकने से मूंगाभस्म बन जाती है ।[6]

१- द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०-४८

२- तण्डुलयिद्रवेणेह दोलायंत्रे तु यामकम्।
प्रवालक परिस्विन्नं शुद्धिमायात्यनुत्तमम्।। र० वि०, पृ०-१३१

३- द्रष्टय र० वि०, पृ०-१३१

४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५३६

५- द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०-४७

६- द्रष्टव्य तदेव - - - - -

४- शुद्ध प्रवाल पांच तोले लेकर एक सरावले में नीचे घीगुवार का गूढा रखकर उस पर उस प्रवाल को रख देना चाहिए । फिर उस प्रवाल पर आधा पाव घीगुवार का गूदा रखकर ऊपर से दूसरा सरावला ढककर दोनों ही दरजों पर कपड़ मिट्टी करके सुखा लेना चाहिए। उसके पश्चात् एक गजपुट की आंच में उस शराव सम्पुट को रखकर फूंक देना चाहिए जिससे शुद्ध प्रवाल भस्म तैयार हो जाएगी ।[१]

५- विशोधित प्रवाल को गोदुग्ध में पीसकर छोटी-छोटी टिकड़ी बनाकर गजपुट में एक ही बार फूंक देने से भस्म बन जाती है ।[२]

६- विशोधित प्रवाल को केले के रस के साथ पीसकर टिकड़ी बनाकर गजपुट में फूंकने से उत्तम भस्म बन जाती है ।[३]

७- धृत कुमारी के स्वरस में विशोधित प्रवाल को पीसकर टिकड़ी बना कर तीन बार गजपुट में फूंकने पर उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ।[४]

४- माणिक्य का शोधन-

१- सर्वप्रथम उत्तम माणिक्य के छोटे-छोटे टुकड़े करके स्वच्छ वस्त्र की पोटली में बाँध कर 'दोलायन्त्र' की विधि से नींबू के रस से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। नींबू के रसके स्थान पर बेर का काढ़ा या रस, खट्टे अनार का रस, इमली का रस इत्यादि अम्ल वर्ग की किसी एक वस्तु के रस का प्रयोग किया जा सकता है। स्वेदनके पश्चात् पोटली को निकाल कर माणिक्य को पृथक् करके उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखा लेने पर शुद्ध माणिक्य प्राप्त होता है ।[५]

२- माणिक्य रत्न के सोधन के लिए दोलायंत्र की सहायता द्वारा शोधन करना पुरानी और सुगम विधि है। नींबू के रस में दोलायन्त्र की सहायता से एक याम तक स्वेदित करने से माणिक्य की शुद्धि हो जाती है अथवा बीजपूर (बिजोरानीबू) citrusacida (साइट्रसएसिडा) जम्बीरी, नींबू, कागजी नीबू ,मीठा नीबू(Sweetlemon)कमरख (carambola)इमली (Tama rind tree)इन अम्लवर्ग के स्वरस के साथ दोलायंत्र की सहायता से माणिक्य का विपाचन करके उत्तम शुद्धि हो जाती है ।[६]

१-द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०- ४७
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१३०
३- द्रष्टव्य तदेव - -
४-द्रष्टव्य तदेव -- -
५-द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५२०
६-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१७८

३- नींबू का सत(citricacid) कुछ पानी के साथ पोर्सले के कटोरे में रखकर सुराप्रदीप (spirit lamp)पर गरम करे,उसी कटोरे में माणिक्य भी डालकर तब तक गर्म करे जब तक द्रवांश उड़ न जाए। बाद में जल में धो लेने पर उत्तम शुद्धि हो जाता है ।[1]

२- माणिक्य का भस्मीकरण-

१- शुद्ध माणिक्य प्राप्त हो जाने के बाद उसे खरल में डालकर बारीक पीसना चाहिए। इसमें इसी के बराबर शुद्धगन्धक, शुद्ध हरताल और शुद्ध मैनसिल मिलाकर खरल करना चाहिए। फिर उसमें नींबू का रस अथवा बड़हल का रस डालकर अच्छी तरह से घोट कर छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में सुखाने पर उसे शराव सम्पुट में बन्दकर धूप में सुखाकर 'गजपुट' में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर माणिक्य को निकाल कर बारीक पीसकर उपयुक्त प्रक्रिया-नुसार कुल आठ पुट देने से माणिक्य की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ।[2]

२ - बहुत ही अच्छी प्रकार से शोधन किए हुए माणिक्य को खूब बारीक चूर्ण करके माणिक्य की समान मात्रा में ही मनः शिला, हरिताल और गंधक प्रत्येक को अलग-अलग लेकर मिला लें और इन चारों वस्तुओं को नींबूके रस से सात दिन तक घोटना चाहिए। इस के पश्चात् टिकियां बनाकर वारणपुट नामक विधि से आठबार पुट देने पर पीली प्रभा रहित भस्म तैयार होजाएगी।[3]

५- नीलम का शोधन-

१- उत्तम नीलम को स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर 'दोलायन्त्र' की विधि से नील के स्वरस से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। उस कपड़े की पोटली में से नीलम को निकालकर प्रक्षालन करके धूप में सुखाना चाहिए । इस प्रक्रिया से शुद्ध नीलम प्राप्त होता है ।[4]

२- नीली के स्वरस के साथ दोलायंत्र में एक याम तक परिपाक करने से शुद्ध नीलम प्राप्त हो जाता है ।[5]

२- नीलम का भस्मीकरण-

१- नीलम का शोधन होने के बाद उस नीलम को पत्थर के उत्तम खरल में डालकर

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १७६
२- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३७

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८६
४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१७
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८७

उसका चूर्ण बनाना चाहिए। जितना नीलम का चूर्ण बना है उतनी ही मात्र में शुद्ध गंधक, शुद्ध मैनीसल और शुद्ध हरिताल लेकर सभी को मिलाकर घोटना चाहिए । इस मिले हुए द्रव्य में बड़हल का रस मिलाकर अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिए । यदि बड़हल का रस उपलब्ध न हो तो नींबू का रस भी मिलाया जा सकता है । दोनों ही रसों में से चाहे वे बड़हल का रस हो या फिर नींबू का रस हो उतना ही मात्रामें लेना चाहिए जितना कि द्रव्य उसमें पूरी तरह से डूबजाए। द्रव्य को पूरी तरह से मिलाने की आवश्यकता होती है। मिले हुए द्रव्य को धूप में रख देना चाहिए ताकि द्रव्य पदार्थ शुष्क भी होता जाए । इस प्रकार मिलाने के बाद जब यह गाढ़ा हो जाए तब उसकी छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में सुखानी चाहिए। उसके बाद मिट्टी के दो शरावों के बीच सम्पुट में बन्द कर ऊपर से सन्धि प्रदेशादि पर कपड़ मिट्टी करके धूप में सुखाकर'गजपुट'में रखकर फूंक देना चाहिए । स्वांगशीत होने पर नीलम को निकालकर खरल में डालकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना कर फिर ऊपरी प्रकिया को दोहराना चाहिए। इस प्रकार से कुल आठ पुट देने से नीलम की भस्म तैयार हो जाती है ।[1] प्रक्रिया

२- मनः शिला का एक भाग, हरताल का एक भाग, गन्धक का एक भाग और विशुद्ध नीलम का चूर्ण लेकर नींबू के रस में सात दिन तक घोटने पर चक्रिका बनाकर धूप में सुखाकर वारण पुट में आठ बार फूंकने पर उत्तम नीलम की भस्म तैयार हो जाएगी।[2]

६- पन्ने का शोधन-

१- उत्तम पन्ने को लेकर स्वच्छ वस्त्र की पोटली में बाँधकर'दोलायन्त्र' की विधि से गोदुग्ध से भरे हुए पात्र में डालकर उस को एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके बाद पन्ने को पोटली में से खोलकर उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखाने के बाद शुद्ध पन्ने की प्राप्ति हो जाती है ।[3]

२- गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा एक प्रहर तक पन्ना को स्वेदित करने से पन्ने को पोटली में बाँधकर तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कल्थी का काढ़ा और कोदों के अन्न का काढ़ा इन छ चीजों को लेकर दोलायंत्र को विधि से दो प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध पन्ने की प्राप्ति हो जाती है ।[4]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५३४

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८७

३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५१८

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८६

२- पन्ने का भस्मीकरण-

१- पन्ने का शोधन होने के बाद शुद्ध पन्ने को पत्थर के अच्छे खरल में डालकर उसका बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। फिर इस चूर्ण में पन्नेके बराबर ही शुद्ध हरताल, मैनसिल और शुद्ध गंधक मिलाकर और बड़हल या नींबू का रस उतना ही डालना चाहिए, जितना कि खरल के ठोस पदार्थ उसमें पूर्णतया डूब न जाएं। बाद में इसे अच्छी तरह मिलाकर थोड़े-थोड़े समय के लिए धूप में रखना चाहिए जब तक कि गाढ़ा न हो जाए। इस के बाद छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में सुखाकर इसको शराव सम्पुटमें बन्दकर सन्धिबन्धन कर धूप में सुखाकर 'गजपुट' में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशति होने पर सकोरे में पन्ने को निकालकर खरल में डालकर इसका सूक्ष्म चूर्ण बना लेना चााहिए। इसी प्रक्रिया को करते हुए कुल आठ पुट देने चाहिए। बड़हल का रस अथवा नींबू का रस जो भी प्रथम पुट में लिया जाये उसी का आठों पुटों में प्रयोग करना चाहिए। इस से शुद्ध भस्म तैयार हो जाएगी।[१]

२- पन्ने को विशोधित कर समान भाग में मनः शिला, गंधक और हरताल को लेकर अच्छी तरह मिलाकर बड़हल के रस में घोटकर मूषा में बन्द कर आठ बार फूंकने से शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[२]

३- पन्ने को गरम करके १०० बार धीगुवार के रस में बुझाना चाहिए। मनः शिला, हरताल, हिंगुलोत्य, पारद, शुद्ध गन्धक, चौकिया, सुहागा, इन चीजों को समभाग लेकर कजली करके उसमें चौथाई शुद्ध पन्ने का चूर्ण रख कर आतशी शीशी में भरकर सिन्दूर रस की तरह मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि में पकाने पर पन्ने की शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[३]

७- वैदूर्य का शोधन-

१- उत्तम वैदूर्य को लेकर कपड़े की स्वच्छ पोटली में बाँधकर 'दोलायन्त्र' की विधि से त्रिफला के क्वाथ में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् पोटली को खोल कर वैदूर्य को निकालकर उष्णदिक से धोकर धूप में सुखाने पर शुद्ध वैदूर्य प्राप्त होता है।[४]

२- वैदूर्य को त्रिफला के क्वाथ में एक याम तक दोलायंत्र में परिस्वेदन करने से वैदूर्य का शोधन हो जाता है।[५]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३४
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १९६

३- द्रष्टव्य वनो० चद्रो०, पृ०- ४८
४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५२४
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०६

२- वैदूर्य का भस्मीकरण -

१ - वैदूर्य का शोधन होने के बाद सूक्ष्म रूप से चूर्ण करके उसमें वैदूर्य की मात्रा के बराबर शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल और शुद्ध गन्धक मिलाकर अच्छी तरह से घोट लेना चाहिए । नींबू का रस या बड़हल का रस उतनी ही मात्रा में मिलाना चाहिए, जितना कि द्रव्य उसमें डूबजाए। इस द्रव्य को अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए। थोड़े-थोड़े समय में खरल को धूप में रखकर सुखाना चाहिए। इसके बाद छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धुप में रखकर सुखाना चाहिए। फिर इसे शराव सम्पुट में रखकर फूंक देना चाहिए । स्वांगशीत होने पर वैदूर्यको सकोरे में से निकालकर बारीक पीसकर फिर इसी प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। इस प्रकार से कुल आठ पुट देकर अन्त में वैदूर्य की भस्म तैयार हो जाती है ।[1]

२-- शोधन किए हुए वैदूर्य को बारीक चूर्ण करके वैदूर्य के ही समान मात्रा में अर्थात् जितना वैदूर्य है उसी मात्रा में मनः शिला, हरिताल और गंधक प्रत्येक को अलग-अलग लेकर अच्छी प्रकार से उसे मिला लेना चाहिए। इन चारों वस्तुओं को नींबू के रस से सात दिन तक घोटनेके बाद चक्रिकायें बनाकर घाम में सुखानी चाहिए । इन चोक्रकाओं को वारण पुट नामक विधि से आठ बार पुट देने के बाद वैदूर्य की भस्म तैयार हो जाएगी ।[2]

८- फिरोजे का शोधन-

१- फिरोजे को कपड़े को पोटली में बाँधकर नींबू के रस, गोमूत्र और यवक्षार के मिश्रण से भरे हुए पात्र में दोलयंत्र की विधि अपनाकर उसे लटका देना चाहिए और एक प्रहर तक उसका स्वेदन करना चाहिए। इसी प्रकार से कुल दो या तीन बार स्वेदन करना चाहिए। बाद में पोटली को खोलकर फिरोजे को निकालकर उष्णोदक से प्रक्षालन करके शुद्ध फिरोजा प्राप्त हो जाता है।[3]

२- दूसरे प्रकार की विधि से सिरस के फूलों के रस अथवा इसी में अदरक का रस भी मिलाकर 'दोलायन्त्र' की विधि से एक प्रहर स्वेदन करने से फिरोजा शुद्ध हो जाता है ।[4]

३- नींबू के रस में यवक्षार और गौमूत्र मिलाकर दोला यंत्रद्वारा फिरोजे को तथा अन्य धातुओं को दो या तीन बार एक-एक प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ।

४- अन्य प्रकार की विधि से फिरोजे, शिरीष पुष्प और अद्रक के स्वरस में स्वेदन करने से फिरोजा शुद्ध हो जाता है । फिरोजे को खूब बारीक पीसकर पानी में घोलकर इस में जैतून का तेल डालकर आग नर गरम करना चाहिए। द्रव्य में मिले हुए पानीके सूख जाने के बाद इस द्रव्य

पर

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५४२

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०६

३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१६

४- द्रष्टव्य तदेव - - - - —

को फिर से थोड़ा पीसकर पानी और जैतुनका तेल मिलाकर इसे अग्नि में गरम करना चाहिए। गरम हो जाने के बाद पानी और तेल को निकाल लेना चाहिए । फिरोजे के चूरे को निकालकर सोख्ते से सुखा लेना चाहिए। इस प्रक्रिया से फिरोजा शुद्ध हो जाता है ।[1]

२- फिरोजे का भस्मीकरण-

१- फिरोजे का शोधन हो जाने के बाद उसका सूक्ष्म रूप में चूर्ण कर लेना चाहिए । फिर इस में फिरोजे की मात्रा के बराबर ही शुद्ध गंधक मिलाकर नींबू के रस के साथ अच्छी तरह से मिलाकर छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में सुखानी चाहिए । सूखने के बाद शराव-सम्पुट में रख कपड़ मिट्टी कर धूप में सुखाकर'गजपुट'में रखकर फूंकना चाहिए । स्वांगशीत हों जाने पर पेरोजको निकालकर के उसका सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिए। स्वांगशीत हों जाने पर पेरोज को निकालकर के उसका सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिए । सारी प्रक्रिया को सात पुट देने से फिरोजे की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ।[2]

६- गोमेद का शोधन-

१- उत्तम गोमेद मणि को लेकर कपडे की पीटली में बाँधकर 'दोलायन्त्र' की विधि से नींबू के स्वरस में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् गोमेद मणि को पोटली में से स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् गोमेद मणि को पोटली में से निकाल कर उष्णोदक से प्रक्षालन करके सुखाकर संग्रह करना चाहिए। यदि नींबू का रस उपलब्ध न हो तो इसके स्थान पर गोरोचन का क्वाथ भी ग्रहण किया जा सकता है ।[3]

२- दूसरी विधिके अनुसार लोहेकी करछुल में गोमेद को रखकर अग्नि पर तपाना चाहिए और फिर उसे नींबू के स्वरस में से भरे हुए पात्रमें उलटकर गोमेद को बुझा देना चाहिए । उसके पश्चात् गोमेद को निकाल कर दोबारा इसी प्रक्रिया को अपनाना चाहिए । इस प्रकार की प्रक्रिया को तब तक करते रहना चाहिए जबतक कि गोमेद स्वयं खण्डित होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त न हो जाए। इस प्रकार की प्रक्रिया को करने के लिए गोमेद को अनेक बार तपा कर बुझाना होता है। बुझाने की प्रक्रिया नींबूके स्वरस के स्थान पर गोरोचन के क्वाथ में भी की जा सकती है ।[4]

३- नींबू के रस में दोलायन्त्र विधि से १२ घण्टे तक परिस्विन्न करने से बहुत ही उत्तम प्रकार से गोमेद की शुद्धि हो जाती है ।[5]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २१३
२- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३५
३- द्रष्टव्य तदेव -- पृ०- ५१५
४- द्रष्टव्य तदेव -- -- -- --
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८५

२- गोमेद का भस्मीकरण-

१- सर्वप्रथम शुद्ध गोमेद मणि को खरल में डालकर उसका सूक्ष्म चूर्ण कर लेना चाहिए । अब इस में जितना गोमदका चूर्ण है उतनी ही मात्रा में शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल और शुद्धगंधक मिलाकर अच्छी तरह से घोट लेना चाहिए । फिर इसमें नींबू का रस इतना ही मिलाना चाहिए जितना कि द्रव्य रस में डूब जाए। इस रस को अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए। जब यह द्रव्य गाढा हो जाए, तब इसकी छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में रखकर सुखा लेनी चाहिए। इस के बाद इन टिकियों को शराव-सम्पुट में बन्द कर ऊपर से कपड़ मिट्टी करके गजपुटमें फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत हो जाने पर शराव को खोलकर गोमेद को निकालकर खरल में रखकर पीसना चाहिए इसी प्रकार को दोहराकर आठ पुट देने से गोमेद की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। यदि नींबू का रस न हो तो बड़हल के रस का भी प्रयोग किया जा सकता है ।[१]

२- शुद्ध किए हुए गोमेदको अच्छी प्रकारसे चूर्णित करके मनः शिला, हरताल ओर गन्धक गोमेद चूर्ण के बराबर परिमाण में लेकर सात दिन तक नींबू के स्वरस में घोटना चाहिए और चक्रिका बनाकर गजपुट में फूंक देना चाहिए । इस प्रक्रिया को आठ बार करने अर्थात् गजपुट में आठ बार फूंकने से उत्तम प्रकार की गोमेद भस्म तैयार हो जाती है ।[२]

१०- पुष्पराग का शोधन-

१- पुष्पराग को स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर 'दोलायन्त्र' की विधि से कुलथी के क्वाथ और कांजी के मिश्रण में एक प्रहर स्वेदन करने के पश्चात् उसे कपड़े की पोटली से निकालकर स्वच्छ उष्णोदक से प्रक्षालन करके सुखा देना चाहिए। इससे पुष्पराग का शोधन हो जाता है ।[३]
२- पुष्पराज को काँजी और कुलथी के क्वाथ में दोलायंत्र के द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करने से भली भाँन्ति इसका शोधन हो जाता है ।[४]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं, पृ०- ५३०-५३१

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८५

३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१६

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २६६

२- पुष्पराग का भस्मीकरण-

१- शुद्ध पुष्पराग को खरल में डालकर पीसकर पुष्पराग के बराबर ही शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल और मैनसिल मिलाकर खरल कर लेना चाहिए। इसमें नींबू का रस उतना ही मिलाना चाहिए जितना कि द्रव्य उसमें डूब जाए। नींबू का रस न होने पर बड़हल का रस भी मिलाया जा सकता है। इसे धीरे-२ मिलाकर शुष्क करने के लिए धूप में रखना चाहिए। जब टिकिया बनाने योग्य हो जाए तो टिकिया बनाकर धूप में सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द कर सन्धि करके धूप में सुखाकर 'गजपुट' में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर पुष्पराग को सकोरे में निकालकर खरल में बारीक पीस लेना चाहिए। इसी प्रक्रिया को अपनाते हुए कुल आठ पुट देकर पुष्पराग की शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[1]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३५

शुभाशुभ फल प्राप्ति में रत्नों का योगदान

१- हीरे के अशुभ फल-

अशुभ लक्षण से युक्त हीरे को धारण करने से शुभ फल की प्राप्ति नहीं हीती है। जैसे पुत्र की इच्छा रखने वाली स्त्रियों की अशुभ लक्षण युक्त एवं सामान्य हीरे को धारण नहीं करना चाहिए । अशुभ लक्षणों से युक्त हीरे को धारण करने से राजाओं के बन्धु, धन और प्राण आदि का नाश होता है।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त हीरे को धारण करने से वज्रमय अर्थात् वज्र के समान देह बनात है। विष, शत्रु, एवं संकट आदि का नाश करता है तथा वीर्य एवं भोग की वृद्धि करता है। पुत्र की कामना रखने वाली स्त्री को संघाडे की आकृति वाला तीन पुटों से युक्त धान्य फल के समान हीरे को धारण करना चाहिए ।[1]

पुत्र की कामना करने वाली स्त्री को सदा सफेद,निर्मल शुक्ल आभायुक्त हीरे को ही धारण करना चाहिए। हीरा भय को दूर करने वाला, धैर्य को बडाने वाला, भद्रता एवं अन्तर्दृष्टि, ज्ञान एवं पवित्रता को देने वाला, नपुसंकता आदि को दूर करने वाला और वीर्य को बडाने वाला होता है ।[2]

हीरे के शुभाशुभ फल का ऐसा ही वर्णन गरुड पुराण में भी मिलता है ।[3]

२- मुक्ता के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से पुत्र, धन, यश आदि का नाश, रोग एवं शोक की वृद्धि होती है तथा मानसिक अशान्ति उत्पन्न होती है। दोष युक्त मोतीको धारण करने से सौभाग्य यश, बुद्धि, पुत्र, धन,उद्योग तथा सम्पत्ति का नाश होता है एवं रोग उत्पन्न होते हैं ।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से पुत्र,धन और यश की प्राप्ति होती है। रोग एवं शोक का नाश होता है और सभी अभिलाषित कार्यो की सिद्धी होती है ।[4]

१- द्रष्टव्य बृ० सं०, ८०/१७-१८

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८

३- द्रष्टव्य ग० पु०- ६८/४३-५२

४- एतानि सर्वाणि महागुणानि सुतार्थ सोभाग्ययशस्कराणि।
रुक्शोकहन्तृणि च पार्थिवानां मुक्ताफलानीप्सितकामदानि।। बृ० सं०- ८०/३०

रत्न शास्त्रीय परीक्षा विधि के अनुसार सभी गुणों का उदय जिस मोती में हो ऐसा मोती यदि किसी पुरूष को प्राप्त हो जाए तो वह अपने स्वामी को किसी भी प्रकार के एक भी अनर्थोत्पादक दोष के सम्पर्क में नहीं आने देता है अर्थात् सर्वसम्पदादायक होता है ।[1]

शुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से अनिष्ट का नाश और सौभाग्य की बृद्धि होती है तथा जो स्त्रियों की चंचलता है वह गम्भीरता में परिणत हो जाती है। बुद्धि वर्धक, पुत्र,धन,यश एवं सम्पति की प्रप्ति होती है ।[2]

३- प्रवाल के अशुभफल-

अशुभ लक्षणों से युक्त प्रवाल को धारण करने से मंगल सम्बन्धित रोग, व्याधियाँ तथा विष आदि का भय होता है।

शुभ फल-

शुभ लक्षण युक्त प्रवाल को धारण करने से मंगल ग्रह सम्बन्धि सभी रोगों का निवारण होता है । वीर्य और कान्ति को बढ़ाने वाला, विषादि दोषों का नाशक, अग्नि आदि भय को दूर करने वाला, बल और कीर्ति देने वाला होता है । धन धान्य से सम्पन्न बनाने वाला तथा विषदि दुखों की दूर करने वाला होता है। इसको आयु एवं अवस्था के अनुसार धारण करना चाहिए ।[3]

४- माणिक्य के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों युक्त माणिक्य को धारण करने से सिर पीड़ा, ज्वर, पित्त हृदय रोग, विषज व्याधियाँ, तेजहीनता, मन्दाग्नि आदि रोग चिन्ता, मृत्यु, धननाशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं ।

शुभ फल-

श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त माणिक्य को धारण करने से यह मनुष्य को अत्यधिक सौन्दर्य सम्पन्न बनाता है । रोग नाशक, तेज, बल, बुद्धि, विद्या एवं शत्रु पर विजय तथा बलि बनाता है।[4]

१- एवं समस्तेन गुणोदयेन यन्मोक्तिकं योगमुपागतं स्यात्।
न तस्य भर्त्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः ।। ग० पु०- ६६/४३

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -६४

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १३०-१३१

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १६८-१६६

५- पन्ना के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों से युक्त एवं खण्डित पन्ने को धारण करने से त्वचा सम्बन्धि रोग, वायुजन्य पीड़ा, जिह्वा रोग, वाणी दोष, धनहानि, अकस्मिक कष्ट, निर्बलता एवं अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त कान्तिमान पन्ने को धारण करने से बुध सम्बन्धि रोग, वाणी दोष सन्निपातादिक रोग, निर्बलतादि रोगों का क्षय, बलवृद्धि, धनसम्पत्ति लाभ, यश, कीर्ति विद्यादि लाभ, भूतप्रेतादि बाधा का निवार्ण, परस्पर प्रेम-लाभ, मुकदम्मे में विजय और सर्व सुख प्रदान करने वाला होता है ।[1]

६- नीलम के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों युक्त नीलम को धारण करने से विभिन्न प्रकार के रोग व्याधियाँ अनेक प्रकार की आकस्मिक घटनाएँ, भय और शोक उत्पन्न होते हैं ।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त नीलम को धारण करने से लक्ष्मी, आयु, अरोग्य, समर्थ, वैभव, व्याधियों का नाश,इष्ट सिद्धि, यश-कीर्ति,बल,वीर्य वृद्धि एवं मानसोल्लास की प्राप्ति होती है । साधारण व्यक्ति भी नीलम धारण करने से राजा, महाराजा, सेठ, साहुकार, नेता, अभिनेता, विद्ववान, विदूषी किसी के भी सामने हत प्रभ नहीं होता है अर्थात् निर्भयता एवं मानसिक बल बना रहता है ।[2]

७- वैदूर्य के अशुभ फल-

खण्डित एवं अशुभ लक्षणों से युक्त वैदूर्य को धारण करने से पित्त, रक्तादि रोग, बुद्धि, आयु, बल एवं धनादि की हानि करता है।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त वैदूर्य को धारण करने से केतु ग्रहके अरिष्ट होने से उत्पन्न व्याधियों, पित्तादि रोगों को नष्ट करता है। बुद्धि आयु तथा बल को बढ़ाता है। मन्दग्नि की दीप्ति करता है। मलमोचन कार्य करता है ।[3]

१-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १६४-१६५

२-द्रष्टव्य तदेव- पृ०- १८६

३-द्रष्टव्य तदेव- पृ०- २०५

८- पुखराज के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों वाले पुखराज को धारण करने से मस्तिष्क, कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्रादि प्रत्यंगों में पीड़ा होने लगती है । शरीर मोटा होने लगता हैं। मुखरोगदि होते है । बुद्धि, विद्या एवं कार्यों में विघ्न उत्पन्न होते हैं और अकस्मात् धन हानि होती है ।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त पुखराज को धारण करने से मस्तिष्क ,कर्ण ,जिह्वा, नासा, नेत्रादि प्रत्यंगों में पीड़ाका निवारण होता है। शरीरका मोटापन कम होता है। मुखरोग, राजयक्ष्मा, श्वास-कास, हृदय रोग, आम वात, सन्धिवात, मेदारोग आदि व्याधियों का शमन होता है । धन, यश, कीर्ति, बल बृद्धि, विद्या एवं पुत्रलाभ होता है। वैवाहिक सुख प्रधान करता है।[1] सर्प आदि विष को शान्त करता है । बृहस्पति की कुपित अवस्था को शान्त करता है एवं बृहस्पति को बली करता है। शुभ लक्षणों से युक्त पुख्राज को धारण करने से स्त्रियों को पुत्र की प्राति होती है।[2]

९- गोमेद के अशुभ फल-

खण्डित एवं कान्तिहीन आदि लक्षणों से युक्त गोमेदको धारण करने से अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं । भूत प्रेतादि का भय, शत्रु का भय, अकस्मात् हानि एवं युद्ध क्षेत्र में पराजय होती है ।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त गोमेद को धारण करने से राहु की कुदृष्टि से उत्पन्न सभी मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों का शमन होता है । भूतप्रेतादि बाधा की शान्ति होती है। अन्न, धन, पुत्र, सम्पत्ति अथवा वैभव की प्राति होती है । मनुष्य को भद्रतामय जीवन यापन करते हुए समाज में प्रतिष्ठा उपलव्ध होती है। वन्य हिंसक पशुओं से किसी प्रकारका शारीरिक भय उत्पन्न नहीं होता है । दाम्पत्य जीवन सुखमय एवं स्नेह बन्धन बना रहता है। युद्धक्षेत्र में किसी प्रकार का भय नहीं होता और यश कीर्ति तथा बल को बढ़ाता है। सर्पादि विष को शान्त करता है। राहु के अनिष्ट प्रभाव को शमन करके शुभ फल प्रदान करता है ।[3]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० २६४-२६५

२- द्रष्टव्य ग० पु०, अ० ७४, श्लो०-५

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८१

रत्न धारण का उपयुक्त समय

आचार्यों ने रत्नों को धारण करने के लिए निश्चित समय मुहूर्त तथा नक्षत्र बताए हैं। आचार्यों द्वारा बताए गए उपयुक्त समय में रत्न को धारण करने से अनिष्ट फल का शमन होता है। यदि रत्नों को बताए गए समय के अनुसार धारण नहीं किया जाता है तो वह पूर्ण रूप से फल प्रदान करने में असमर्थ हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के रत्नों का समय इस प्रकार से दिया गया है-

१- हीरा- अष्टकोणाकृति से युक्त पौष मास में शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र में हीरे को धारण करना चाहिए ।[1]

२- मुक्ता- मुक्ता को शुक्ल पक्ष में सोमवार को रोहिणी नक्षत्र के योगकाल में धारण करना चाहिए ।[2]

३- प्रवाल- प्रवाल को मंगलवार के दिन अनुराधा नक्षत्र में धारण करना चाहिए ।[3]

४- मरकत- मरकत को बुधवारके दिन उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र में धारण करना चाहिए ।[4]

५- पुष्पराग- पुष्पराग को मार्गशीर्ष मास में बृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र में धारण करना चाहिए ।[5]

६- नीलम- नीलमको आषाढ मास में शनिवार को श्रावण नक्षत्र में धारण करनाचाहिए।[6]

७-माणिक्य- माणिक्य को चेत्रमास में रविवार के दिन रवि-पुष्य योग में धारण करना चाहिए।[7]

८- गोमेद- गोमेद को उत्तराफल्गुणी नक्षत्र में बुधवार को धारण करना चाहिए ।[8]

९- वैदूर्य- वैदूर्य को गुरु-पुष्य योग में धारण करना चाहिए ।[9]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८
२- ,, तदेव- पृ०- ६२
३- ,, ज्यो० र० पृ०-५२
४- ,, तदेव ,, ,,
५- ,, र० वि०, पृ०- २६४
६- ,, तदेव- पृ०- १८६
७- ,, तदेव- पृ०- १६८
८- ,, ज्यो० र०, पृ०- ५२
९- ,, तदेव ,, ,, ,,

आभूषण तथा हथियार बनाने के लिए जो मुहूर्त बताए गए है वे इस प्रकार हैं- त्रिपुष्कर योग के दिन चरक्षिप्त और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में आभूषण बनाना शुभ बताया गया है। यदि मोती, हीरा, माणिक्य आदि रत्न आभूषणों में जड़ित करने हों तो तीक्ष्ण और उग्र संज्ञक नक्षत्रों मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा इन नक्षत्रों को छोड़कर शेष नक्षत्रों में सूर्य और मंगलवारों तथा मेष, वृश्चिक और सिंह लग्नों में रत्न जड़ित आभूषण बनाने चाहिए। चर क्षिप्र ध्रुव और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में चन्द्र शुक्रवारों कर्क वृष तुलादिक शुभ दिनों व लग्नों में मोती से जड़ित आभूषणों का निर्माण शुभ कहा गया है।[1]

रत्न घटन कार्य के लिए जो मुहूर्त बताया गया है वह इस प्रकार है- भरणी, कृत्तिका धनिष्ठा, ज्येष्ठा, स्वाती, रोहिणी, चित्रा, आर्द्रा, मूला, विशाखा नक्षत्रों में अशुभग्रहों के वासरों में तथा स्थिर लग्नों में वैकटिक कर्म (रत्न घटन कार्य) शुभ एवं हितकर माना गया है।[2]

१- द्रष्टव्य मू०चि० पृ०- ८७-८८

२- ,, ज्योतिर्विदामरणम, पृ०- ६१६

उपसंहार

प्रस्तुत शोध में संस्कृत ग्रन्थों में रत्नों के उत्पत्ति स्थान,प्रकार,विशेषता,रत्नों द्वारा मानव जाति को अनेक प्रकार के लाभ, अरिष्ट ग्रहों का शमन,विभिन्न रोगों का निवारण, यश-मान, कीर्ति एवं भाग्योन्नति के अनेक प्रकार के प्रयोगों का विवेचन आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

इस शोध निबन्ध में मनुष्य के विभिन्न प्रकार के रोगों का शमन न केवल धारण से बताया गया है अपितु रत्नों की भस्मों द्वारा भी रोगों का शमन बताया गया है। असाध्य से असाध्य रोगों का निवारण भी रत्नों द्वारा किया जासकता है। अरिष्ट ग्रहों का शमन एवं भाग्योन्नति केलिये रत्न मानव जीवन के लिये हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध होते हैं। हमारे संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में अनेक प्रकार के रत्नों एवं मणियों का विस्तार से विवेचन एवं महत्व बताया गया है जिन में से प्रमुखरत्नों के ऊपर इस शोध-प्रबन्ध में विवेचन किया गया है ।इस शोध प्रबन्ध द्वारा साधारण मनुष्य भी रत्नों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता है और अपने जीवन के मार्ग में ग्रहों द्वारा आने वाले संकटों का निवारण कर सकता है। इस शोध-निबन्ध द्वारा यह ज्ञान प्राप्त हुआ हैकि रत्न मनुष्य के लिये न केवल अरिष्ट की शान्ति के लिये लाभदायक हैं अपितु अनेक प्रकार के रोगों का निवारण करने एवं कार्य सिद्धि के लिये लाभदायक होते हैं।

रत्नों के बारे में जो अद्भुत ज्ञान वैदिक साहित्य, पुराणों एवं शास्त्रों में विस्तार से दिया हुआ है उस को एकत्रित कर के साधारण मनुष्यों तक पहुँचाने का मैंने यह लघु प्रयास किया है।

प्रथम अध्याय- में रत्नों से सम्बद्ध ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय- के अन्तर्गत रत्न का अर्थ, विभिन्न ग्रन्थों में रत्नों की संख्या, गुण-दोष आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय- में रत्न परीक्षा विधि बताई गई है कि किस प्रकार से रत्नों का परीक्षण करके ही उन्हें धारण करना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय- में रत्न धारण के लाभ, अनिष्ट ग्रहों के शमन में रत्न धारण के लाभ, विविध रोगों में रत्नों की उपकारिता, शुभाशुभ फल प्राप्ति में रत्नों का योगदान तथा रत्न धारण का उपयुक्त समय आदि विषयों का विवेचन विस्तार से किया गया है।

अन्त में मैं शोध-निबन्ध को पढ़ने वालों एवं अन्य विद्वानों से यह अपेक्षा करती हूँ कि हमारे शास्त्रों में रत्नों के सम्बन्ध में जो ज्ञान दिया हुआ उस ज्ञान के द्वारा रत्नों का प्रयोग कर के अपने एवं अन्य मनुष्यों के कार्यों को सिद्ध कर के जीवन को सुखमय बना सकें।

मुख्य ग्रन्थ

क्र०	ग्रन्थनाम	लेखक/सम्पादक	प्रकाशक	सम्वत्/वर्ष
१-	गरुड महापुराणम्	पं रामतेजपाण्डेयन	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९८६
२-	अग्नि पुराणम्	तारिणीश झा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग इलाहाबाद	१९९८
३-	गरुड पुराण	अबध बिहारी लाल अवस्थी	चौखम्बा संस्कृत प्रकाशक वाराणसी	१९९५
४-	बृहत्संहिता	पं० श्री अच्युतानन्द झा शर्मा	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	२०००
५-	सिद्ध भेषज संग्रह	कविराज युगल किशोर गुप्ता	चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस	१९५३
६-	रत्नविज्ञान	पं० राधाकृष्ण पराशर	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९७२
७-	वनौषधि चन्द्रोदय भाग-२	श्री चन्द्रराज भण्डारी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	१९९४
८-	वनौषधि चन्द्रोदय भाग-६	श्री चन्द्रराज भण्डारी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	१९९४
९-	पुराणविमर्श	बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	२००२
१०-	अर्थशास्त्रम्	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९९६
११-	भावप्रकाश निघण्टु	श्री गंगा सहाय पाण्डेय	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	१९९०

१२-	हिन्दी विश्वकोष	रामप्रसाद त्रिपाठी	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	१९६०
१३-	अमर कोश	अमर सिंह	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	१९७०
१४-	Sanskrit Hindi English Dictionary	by Suryakanta	Surjaeet Mukherjee New Delhi	1975
15-	Sanskrit Eng-Dict.	Sir Monier	इन्द्रजीत प्रकाशक	१४८८
१६-	संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ	स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा	रामनारायण लाल इलाहावाद	१९५७

सहायक ग्रन्थ सूची

१-	मत्स्य पुराणम्	तारिणीश झा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	१९८८
२-	काम सूत्रम्	वात्स्यायन	निर्णयसागर यंत्रालये मुम्बई	१९००
३-	बृहद्योगतरंगिणी	त्रिमल्लभट्ट	आनन्दश्रम मुद्रालये	१९१३
४-	सुश्रुत संहिता	अत्रिदेव	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी, पटना	१९९४
५-	मुहूर्तचिन्तामणि	पं० सुताराम	खेमराज कृष्णदास बम्बई	१९५२
६-	ज्योतिष रहस्य	श्री जगजीवनदास गुप्ता	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	--
७-	श्री शिवमहापुरण	डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	चौखम्बा प्रतिष्ठान	१९९६
८-	मुहूर्त चिन्तामणि	पं० केदार दत्तजोशी	मोती लाल बनारसी दास वाराणसी	१९७२
९-	मुहूर्त चिन्तामणि	श्री राम दैवज्ञ	श्री विंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई	१८५५

१०-	शब्द कल्पद्रुमः	स्यार-राजा राधाकान्तदेव बहादुरेण विरचित	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	१९९१
११-	शुद्धि दीपिकाः ज्योतिषशास्त्रम्	पं० महामहोपाध्याय	श्री विकंटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई	--
१२-	ज्योतिर्विदाभरणम्	रामचन्द्रपाण्डेय	मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी	१९८८
१३-	स्कन्द पुराण	श्रीमनमहाऋषि द्वैपायन	दिनेन्द्र स्टीम कोलकता	१९९१
१४-	विष्णुधर्मोत्तर पुराण	पं० माधवप्रसादशर्मा द्वारा संशोधित	श्री विकंटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई	--
१५-	महाभारत	पं० रामनारायणदत्त शास्त्री	गीता प्रेस गोरखपुर	--
१६	रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह	ठक्कुर फेरू	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	--
१७-	भाव प्रकाश	श्री ब्रह्मशंकर शास्त्री	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	१९९९